Chapter-5

अध्याय : पांच : ऋषभचरण जैन की कहानियाँ :

:: अध्याय : पाँच ::

:: ऋषभचरण जैन की कहानियाँ ::

ऋषभचरण जैन प्रेमचन्द-युग के कथाकार हैं, और प्रेमचन्द युग के प्रायः कथाकार कथा के दोनों रूपों में -- उपन्यास व कहानी -- लिखते रहे हैं। नवजागरण युग के कारण तत्कालीन समाज में समाज-सुधार की प्रवृत्ति सविशेष देखी जाती है। दहेज समस्या, विधवा-विवाह, वेश्या-समस्या, अनमेल-ब्याह की समस्या, वृद्ध-विवाह की समस्या, जाति-पाँति की समस्या, अस्पृश्यता की समस्या, स्वदेशाभिमान, मातृभाषा का गौरव, विदेशी शासन का विरोध, विदेशी कपड़े का विरोध, हिन्दू-मुस्लिम एकता, शराब-जुआ आदि व्यसनों और बुरी लतों का विरोध जैसे अनेक विषय थे, जिन पर तत्कालीन लेखक कहानियाँ लिख रहे थे। उस समय की कहानियाँ प्रायः किसी-न-किसी फार्मूले पर आधारित होती थी। कहानी में आदि-मध्य-अंत जैसे स्पष्ट विभाग होते थे। कहानी के आरंभ और अन्त पर सविशेष ध्यान दिया जाता था -- " ए स्टोरी इज़ लाइक ए हॉर्स, व्हेर

द स्टार्ट एण्ड द ऐण्ड काउण्ट मोस्ट " ।[1] कहानी का प्रारंभ रोचक व कुतूहल-वर्द्धक हो इस बात का सविशेष ख्याल रखा जाता था । प्रायः कहानी के प्रारंभ में प्रकृति का मनोहारी या भावानुरूप या विषयानुरूप चित्रण भी रहता था । कहानी का अंत झटकेदार हो यह भी इच्छनीय समझा जाता था । प्रायः कहानीकार सीधी-सादी मुहावरेदार प्रेमचन्द-शैली या फिर तत्सम शब्दावली युक्त आलंकारिक व काव्यात्मक ऐसी प्रसाद-शैली का अनुसरण करते थे । ऋषभजी की कहानियों में भी ये सब विशेषताएं लक्षित होती हैं ।

ऋषभजी की प्रथम कहानी " मिट्टी के रूपये " सन् 1926 में प्रकाशित हुई थी ।[2] आपकी सब कहानियां कुल पांच संग्रहों में प्रकाशित हुई थीं — 1. चांदनी रात , 2. अनासक्त तथा अन्य कहानियां , 3. बुर्केवाली तथा अन्य कहानियां , 4. हड़ताल तथा अन्य कहानियां तथा बिखर 5. बिखरे मोती । प्रेमचन्द के "सोजेवतन" की भांति "हड़-ताल तथा अन्य कहानियां " कहानी -संग्रह ब्रिटिश सरकार द्वारा जब्त हो गया था । "चांदनी रात" संग्रह की बारह कहानियां बाद में सन् 1985 में "दान तथा अन्य कहानियां " शीर्षक से प्रकाशित हुई हैं । इस कहानी-संग्रह में निम्नलिखित बारह कहानियां संकलित हैं — दान, भय , दुनियांदारी , स्वर्ग की देवी , संयोग , मन का पाप , कौड़ियों का हार , पांच रूपये का कर्ज , खेल , सुधार की खोज , निग्रह , अंधी दुनिया ।

"बिखरे मोती " कहानी संग्रह में भी बारह कहानियां संकलित हैं — साहित्यिक पुस्तकालय , मुंशीजी , सूखे आंसू , राख की पोटली , तांगेवाला , अबला का बल , लेखक मुलाजिम , प्रतिबिंब , आन , दान , वीर-भिखारी तथा शत्रु की कन्या । ऋषभजी की कहानियां समय-समय पर तत्कालीन पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं । जैसे "नरक के द्वार पर " कहानी सन् 1930 में "सुधा" पत्रिका में प्रकाशित हुई थी । "पांच रूपये का कर्ज " सन् 1932 के जून में "माया" में प्रकाशित हुई थी । उसी प्रकार "सुधार की खोज" ,

"निग्रह" , "कौड़ियों का हार" , "अन्धी दुनिया" , " भय" तथा "रखैल" आदि कहानियां क्रमशः "सरस्वती " §1932§ , " हंस" §विशेषांक-1932§ , "चित्रपट" §जून-1932§ , "माधुरी" § तुलसी संवत्-307 § , "चित्रपट" §1934§ तथा "चित्रपट" § 1936§ प्रभृति कहानी की प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं । "चांदनी रात" की जो कहानियां "दान तथा अन्य कहानियां" संकलन में प्रकाशित हुई हैं , इनके अतिरिक्त उसमें और चार कहानियां संकलित थीं — " पट बीजना " , "वे आंखें", "विचित्र-विवाह" और "नन्दू तथा रण्डी " । आंग्ल लेखक हाल केन की एक दीर्घ कहानी "दीपशिखा" नाम से धारावाहिक रूप में अनूदित हुई थी ।[3]

यह निर्दिष्ट हो चुका है कि प्रेमचन्द युग के प्रायः सभी उपन्यासकारोंने कहानियों का सृजन किया है । अतः ऋषभजी ने भी अपनी कहानियों के द्वारा हिन्दी कहानी के विकास में अपना योगदान दिया है । ऋषभजी की कहानियों पर प्रेमचन्द , जैनेन्द्र तथा उग्र आदि कहानीकारों का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है । "चांदनी रात" कहानी-संग्रह की कहानियां सुंदर, रोचक और दिलचस्प मालूम पड़ती है । ऋषभजी की कहानियों को हम यथार्थवादी कह सकते हैं , तथापि कहीं-कहीं आदर्शवादी "टच" भी दृष्टिगत होता है , जैसे "दुनियादारी" कहानी में निरूपित बड़ा भाई कमलाकर के व्यवसाय को ठिकाने लाने पर गृहत्याग की बात करते हैं — " बस , अब जाता हूं ; जीता रहा तो आ मिलूंगा । अपनी भाभी का खयाल रखना । "[4] कमलाकर के पूछने पर कि आखिर आप कहां जा रहे हैं , वे विषण्ण हंसी हंसकर कहते हैं — " तीर्थाटन करूंगा । तुम्हारे काम के लिए मुझे शराब छूनी पड़ी । "[5]

ऋषभजी की कहानियों की विशेषता यह है कि उनके पात्र मात्र कल्पित नहीं है , परंतु जीवन के यथार्थ पहलुओं से उनका सीधा सरोकार है । कहीं-कहीं पर अपने समकालीन लेखक उग्र तथा शास्त्रीजी की भांति उनमें भी समाज की तथाकथित नैतिकता के प्रति विद्रोहा-

त्मक भाव मिलता है । यहां लेखक का मूल हेतु समाज में फैली हुई कुरूपताओं और विरूपताओं का यथार्थ चित्रण करके उनके स्थान पर आदर्श स्थितियों की स्थापना का ही रहा है, दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि वे इस कटु स " सत्य " के द्वारा वस्तुतः "शिवं" और "सुंदरं" की ही स्थापना करना चाहते हैं । इन कहानियों में वे पाप का, दुराचार का, समाज में व्याप्त अनैतिकताओं का चित्रण करते हैं और मजे की बात तो यह है कि यह सब बातें उनके द्वारा होती हैं जो सर्वाधिक रूप से नैतिकता की बात करते हैं या जो समाज के शीर्ष स्थानों पर बैठे हुए हैं और जिनका आचरण दूसरे तबके के लोगों के लिए अनुकरणीय समझा जाता है । "स्वर्ग की देवी" कहानी के बंसीलाल वैसे तो नगर-कांग्रेस के एक बहुत बड़े नेता हैं, परंतु पहाड़ों से एक सुंदर कन्या यह कहकर ब्याह लाते हैं कि वे अविवाहित हैं । इस प्रकार वे कन्या तथा उसके पिता दोनों को धोखा देते हैं । जब बंसीलाल की पत्नी से उस बेचारी लड़की मेमो को ज्ञात होता है कि वे उसकी ब्याहता औरत है, तब उस पर गाज-सी गिरती है और अवाक्-सी हो जाती है । बंसीलाल की पत्नी कहती है —" देखो बीबी, उनकी तो मति मारी गई थी, जो तुम्हें चंग पर चढ़ा लाए । अब उन पर धड़ाधड़ जूतियां पड़ रही हैं, और वह अब तुमसे पिंड छुड़ाना चाहते हैं । " 6

चित्रित

यद्यपि ऋषभजी की कहानियों में समाज का गर्हित पक्ष होता है, तथापि उनमें आकर्षण और सजीवता मिलती है । यथार्थ-चित्रण की अभिव्यक्ति में जहां सांकेतिकता के स्थान पर अधिक मुखरता तथा व्यक्ति-परकता आ गयी है, वहां चित्र यत्किंचित् वासनात्मक होते गए हैं । वासना में लिप्त पात्र यदि ऐसे दिखते हैं तो कोई दोष तो नहीं है, परंतु दोष तब हो जाता है जब पाठक को यह प्रतीति होने लगे कि यहां लेखक स्वयं रस ले-लेकर इन चित्रों को उनके सम्मुख रख रहा है । दूसरे शब्दों में कहें तो जहां लेखक कलात्मक तटस्थता एवं निरपेक्षता को चूक जाता है, वहां कई बार अश्लीलता की बू आने लगती है । जैसे उपर्युक्त कहानी "स्वर्ग की देवी" में बंसीलाल और मेमो के संबंधों का

वर्णन कलात्मक संयम के साथ हुआ है, पर उनकी एक अन्य कहानी "मूगा" में रसिकलाल और सुशीला के अनैतिक संबंधों को बताते हुए लेखक मर्यादा की सीमाओं का उल्लंघन करते हुए से दिखते हैं। परंतु इससे इतना तो पता चलता है कि जहां दोनों व्यक्ति "करप्ट" होते हैं, वहां लेखकीय सहानुभूति के अभाव में ऐसे वासनात्मक दृश्य लंबे खींच जाते हैं। "स्वर्ग की देवी" में बंसीलाल तो लंपट है, पर मेमो निर्दोष व मासूम है, अतः लेखकीय संयम वहां बरकरार रहा है।

ऋषभजी की "नरक के द्वार पर" जैसी कहानियों पर आलोचकों ने अश्लीलता के आरोप लगाये हैं, परंतु ऐसा उपर्युक्त कारण से हुआ है। अतः कहानी कला को व्याघात तो जरूर पहुंचा है, परंतु उसमें लेखक के उद्देश्य को लेकर हमारे मन में कोई संशय नहीं होना चाहिए, क्योंकि ऐसी घोर नारकीय स्थितियों में लेखक की कामना तो बेहतर समाज की ही रहती है। पर इसके साथ ही ऋषभजी की कुछेक कहानियां ऐसी हैं जिनमें कलात्मकता के दर्शन होते हैं। "दान", "भय", "दुनियादारी", "स्वर्ग की देवी", "पांच रूपये का कर्ज", "कौड़ियों का हार" तथा "निग्रह" आदि कहानियों को इनमें गिना सकते हैं। "निग्रह" कहानी तो सन् 1932 में हंस के विशेषांक में प्रकाशित हुई थी।[7] "भय" कहानी को "द्विवेदी अभिनंदन ग्रंथ" के लिए प्रेषित की गई थी, परंतु उस ग्रंथ में किसी की भी कहानी को न लेने के संचालकों के निर्णय के कारण उसे लौटाया गया था।[8] ऋषभजी की "दान" कहानी में हमें भिन्न-भिन्न मनोवृत्ति के लोगों का अच्छा दिग्दर्शन मिलता है, साथ ही उसकी सूक्ष्म अमुखर जैनेन्द्रीय व्यंग्यात्मकता भी पाठक के चित्त को मोह लेती है।

ऋषभजी की सुधारवादी कहानियों में कहीं-कहीं समाज के घृणित पक्ष के नग्न चित्र अवश्य मिलते हैं, परंतु जैसा कि ऊपर निर्दिष्ट किया गया है, वहां लेखक का आग्रह सामाजिक कुरीतियों को दूर करने का रहा है। "विचित्र विवाह" कहानी में कहानी की नायिका

का विवाह एक तिहाजू बूढ़े से हो जाता है । वह अपनी हवस-पूर्ति के लिए उसे छेड़ता तो है, परंतु वह बेचारी रेत की मछली की तरह तड़प-तड़प कर रह जाती है । लेखक का यह कथन कि " अग्नि के सात फेरे और पंडितजी के मंत्रोच्चारों ने भिखनसिंह को बलात्कार का खुला लाइसेंस दे दिया था । " [9] उसी प्रकार "मुगा" कहानी में भी नायिका सुशीला की अमर्याद काम-वासना के बुरे परिणामों को ही संकेतित किया गया है । प्रेमी की हत्या, पति को जेल और पुत्र की अनाथावस्था । अतः इन सबके द्वारा लेखक एक आदर्श, सुंदर और स्वस्थ समाज की ही परिकल्पना करता है । कहा जा सकता है कि ऋषभजी ने हिन्दी कहानी को भाव, भाषा और शैली सभी दृष्टियों से समृद्ध किया है । उनकी कहानियों में रोचकता, उत्सुकता, मौलिकता, यथार्थता आदि के गुण मिलते हैं ।

उनकी कहानियों की भाषा में शक्ति है, ओज है, सजीवता है, प्रवाह है । "दुनियादारी" कहानी के बड़े भाईसाहब का यह चित्र देखिये — " बड़े भाई ने रूई के सट्टे में दोनों हाथों कमाया । उर्दू और सराफ़ी के वाजिब ज्ञान को छोड़कर बड़े भाई शिक्षा के नाम पर सफेद थे । मगर ज़ुबान के इतने मीठे, दिल के इतने साफ़, नज़र के इतने पक्के और वचन के इतने सच्चे कि जग उनका यश गाता था । भाइयों को जान से ज्यादा प्यार करते, माता को तीर्थ की तरह पूजते और स्त्री से भी उनका नाता हिन्दुस्तानी फर्म के दो समझदार साझियों जैसा था । " [10]

ऋषभजी की कहानी-कला की यह विशेषता है कि शब्द-चित्र के द्वारा एक ही प्रसंग से पात्रों की मनोवृत्तियों को उजागर करते हुए केवल दो-चार उल्टी-सीधी रेखाओं से वे उनके व्यक्तित्व को प्रकट कर देते हैं । कई बार बिल्कुल सपाटबयानी से काम लेते हैं । जैसे "दान" कहानी का प्रारंभ ही उन्होंने इस तरह किया है — " चन्दूलाल, रामचन्द्र, ज्योतिप्रसाद और हुकुमतराय चार आदमियों के नाम हैं । " [11]

इसी कहानी में उक्त चार लोगों के व्यक्तित्व के वैविध्य को लेखक इस प्रकार चित्रित करते हैं — " चन्दूलाल एक घड़ी की दुकान में बीस रूपये का नौकर है । स्त्री है , एक बच्ची है । गुज़र-बसर मुश्किल से होती है । कोट बरसों में बदलता है , जूता टुकड़े-टुकड़े हो जाता है, टोपी का खर्च बचाने के लिए नंगे सिर नौकरी पर जाता है । रामचन्द्र साधारण गृहस्थ हैं । जाति के वैश्य हैं । कृष्ण के सच्चे भक्त हैं । गीता का नियमित पाठ करते और माथे पर चन्दन पोतकर घर से बाहर निकलते हैं । अनाज की मण्डी में दलाली करते हैं । कृष्ण की×कृपाकृपा से खासी प्राप्ति हो जाती है । घर के लोग खुशहाल हैं । ज्योतिप्रसाद किसी अर्द्ध-सरकारी दफ़्तर में हेड़ क्लर्क हैं । वेतन तीन सौ रूपया है ।[12] कपड़े रेशमी पहनते हैं । टोपी फेल्ट लगाते हैं । "अब्दुल्ला" का सिगरेट पीते हैं । अक्सर इण्टर में और कभी-कभी सेकिंड क्लास में सफर करते और बीसों रूपया अपने और बच्चों के स्वास्थ्य की खोज में डाक्टर-वैद्यों को अर्पण करते हैं । हुकूमतराय , मोटी तोंदवाले , क्षत्रिय के अपभ्रंश खत्री हैं । छज्जेदार पगड़ी लगाते हैं । मक्खन-जीन का कोट या रफल का अंगरखा पहनते हैं । दोनों हाथों की उंगलियों में कई-कई अंगुठियां भरे रहते हैं । चूड़ीदार पायजामा पहनते हैं । रेशमी कमरबंद हमेशा लटकता दिखाई देता है , और सलीम-शाही जूते या पंप-शू धारण करते हैं । अक्सर मोजों का इस्तेमाल भी होता है । आंखों में सुर्मा और मुंह में पान चौबीसों घण्टों रमा रहता है । रायसाहब की पदवी प्राप्त कर चुके हैं , और " .... साहब " की जगह " .... बहादुर " बनने की मन में बड़ी लालसा है । "[13]

यहां यह ध्यातव्य रहे कि ऐसे चरित्रों का वर्णन वही लेखक कर सकता है जिसे जीवन का गहरा अनुभव हो और जिसकी निरीक्षण-शक्ति गहरी हो । इस सन्दर्भ में प्रेमचन्द अपने समकालीनों को अक्सर कहा करते थे कि लेखक को अपने पास एक डायरी और पेन्सिल अवश्य रखनी चाहिए , जब भी उसे कोई विशेष व्यक्ति दीखे उसका हुलिया नोट कर लेना चाहिए ताकि उसका उपयोग किसी

चरित्र का बाहरी आपा खींचते हुए किया जा सकता है ।[14] आंग्ल लेखक ईशरवुड ने भी कहा है कि वह जो आदमी खिड़की के पास खड़ा रहता है, मैंने उसे अपने मन के कैमरे में कैद कर लिया है , न जाने कब उसकी जरूरत पड़ जाये ।[15] "मादाम बोवरी" का लेख क ~~फ्लाबर्ट~~x फ्लाबर्ट तो अपने मित्र के "फ्युनरल" तक में इसलिए जाता है कि कहीं कुछ "बावरी" के लिए मिल जाये ।[16] अभिप्राय यह कि समृद्ध जीवनानुभव से संपृक्त लेखक ही यथार्थ चरित्रों का निर्माण कर सकता है और यह कहना न होगा कि ऋषभजी की चरित्र-सृष्टि में हमें यह चरित्रगत यथार्थता के दर्शन पग-पग पर होते हैं ।

उपन्यासों की भांति कहानियों में भी ऋषभजी ने उर्दूमिश्रित मुहावरेदार शैली का उपयोग किया है । उनकी भाषा सहज है , सरल है । तत्सम शब्दों का प्रयोग भी अखरता नहीं है , ठीक वैसे ही जैसे उर्दू प्रयोग खटकते नहीं है , क्योंकि उन्होंने इनका प्रयोग परिवेश और चरित्र की अनुरूपता के अनुसार किया है । अतः कहीं भी वह आयातित या थोपा हुआ नहीं लगता है । जरूरत पड़ने पर उन्होंने अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग भी धड़ल्ले से किया है । इस सन्दर्भ में उन्होंने प्रेमचन्द की भाषा-शैली या भाषा-नीति का अनुसरण किया है ऐसा हम कह सकते हैं । साधारण बोलचाल के शब्दों से भाषा में व्यावहारिकता आ गई है । उपमा और रूपकों की नवीनता तथा नये-नये विशेषणों के प्रयोग कहीं-कहीं भाषा में काव्यात्मकता का आनंद देते हैं । "विचार"वाटिका", "क्रोध का स्खलन " ,"थैंक्स-गिविंग-फंड" , "गतश्री को लौटा लाना" , "विछोह की कसक" ,"अयाचित वकालत" जैसे शब्द-प्रयोग बरबस ही हमारा ध्यान आकृष्ट करते हैं ।[17] अब संक्षेप में यहां हम उनकी प्रतिनिधि कहानियों की चर्चा करने का उपक्रम रख रहे हैं ।

दान :

"दान" ऋषभजी की एक चर्चित कहानी है । पहले यह "चांदनी रात " कहानी संग्रह में प्रकाशित हुई थी , परंतु बाद में

सन् 1985 में "दान तथा अन्य कहानियां " नाम से जो संकलन प्रकाशित हुआ , उसमें वह एक प्रतिनिधि कहानी थी क्योंकि संकलन का शीर्षक उसीके नाम से है । डा. देवीशंकर अवस्थी ने जो कथाकोश तैयार किया है , उसमें भी अश्कजी की इसी कहानी को स्थान मिला है ।

कहानी का उद्देश्य एक होता है , लक्ष्य एक होता है , प्रभाव एक होता है । उपन्यासकार की दृष्टि को हम "भीमदृष्टि" कह सकते हैं , जबकि कहानीकार की दृष्टि "अर्जुनदृष्टि" होती है , जिसे केवल अपना लक्ष्य ही दिखता है ।[18] इस कहानी में भी हम इसकी लक्ष्यान्विति और प्रभावान्विति को देख सकते हैं । दूसरे यह कहानी एक सूक्ष्म व्यंग्य की कहानी है ।

चन्दूलाल , रामचन्द्र , ज्योतिप्रसाद और हुकूमतराय चार व्यक्ति हैं और इन चार के केन्द्र में है एक भिखारी रमजू तथा एक जटाधारी संन्यासी । चन्दूलाल गरीब व्यक्ति है । बीस रूपये की नौकरी करता है । महंगाई में गुजर-बसर मुश्किल से हो पाती है । वह नौकरी से घर जा रहा था कि रमजू की पुकार सुनाई दी -- " बाबा , एक पैसा ! .... तेरे बच्चों की खैर ... ! " इस आर्त स्वर ने या शुभ कामना ने चन्दूलाल के पैर बांध दिए । जेब में एक ही पैसा था । सोचा था , लड़की के लिए दाल-सेब लेते चलेंगे । अब वह इरादा बदल गया , और पैसा जेब में न रह सका । उसने जेब में हाथ डाला , और पैसा रमजू की तरफ फेंक दिया । ... ` छन्न ` से आवाज हुई , और इस पैसे ने रमजू की थैली में पहुंचकर अपने जाति-भाइयों से मिलने की सूचना दी । "[19]

दूसरे सज्जन हैं रामचन्द्र । अनाज की मंडी में दलाली करते हैं । खाते-पीते और सुखी हैं । रमजू की टेर को वे सुनी-अनसुनी कर देते हैं , पर जटाधारी संन्यासी के आगे उनकी धर्मभीरूता घुटने टेक देती है । " नहीं देता ? अच्छा ले , जाता हूं , याद रख , तेरा सर्वनाश हो जायेगा ? ... रामचन्द्र एड़ीसे चोटी तक लरज जाता है , और सवा रूपया का मोह त्याग देता है । सवा रूपया लेकर संन्यासी

लाल आँखें किए आगे बढ़ता है । "[20]

अब बारी आती है बाबू ज्योतिप्रसाद की हैx। वे अर्द्ध-सरकारी दफ्तर में हेड-क्लर्क है । तीन सौ रूपया वेतन है और ठाठ से रहते हैं । रमजू उनके आगे पुकार लगाता है , पर व्यर्थ । वे ऊपर से उसको एक लेक्चर पिलाते हैं । संन्यासी की भी यहां दाल नहीं गलती । पर अनाथाश्रम का डेपुटेशन "हिन्दू धर्म खतरे में " और "लाखों अनाथों की रक्षाxxxxxxxxxxx रक्षा का आयोजन — हिन्दुओं से अपील " और फिर यह पद्य — " हिन्दू-जाति आज जाती है रसातल को सुनो ; लाखों बच्चे भ्रष्ट होते , उनकी कहानी को सुनो । " जैसे लटकों से अंततोगत्वा पच्चीस रूपये गटक ही लिये ।[21]

अंत में आते हैं रायसाहब हुकूमतराय । रायसाहब तो हैं , पर रायबहादुर बनने के सपने देख रहे हैं । रमजू की तो वे पिटाई कर देते हैं । संन्यासी की भी उनके आगे घिग्घी बंध जाती है । अनाथाश्रम वाले बहुत हाथ-पैर मारते हैं , पर उनको भी चकमा दे जाते हैं । डेपुटेशन के एक सदस्य बिहारीलाल के मुँह से निकलता है— "साला है बड़ा घाघ । "[22] घर कोठी पर पहुंचते ही कमिश्नर साहब का एक सर्कुलरनुमा पत्र मिलता है जिसमें वायसरोय ने बादशाह के अच्छे होने की खुशी में "थैं क्स -गिविंग-फंड " खोलने की एक सूचना प्रकाशित करवायी थी और "इस छपी हुई चिट्ठी को रायबहादुरी के स्टेशन का टिकट समझकर रायसाहब उसी वक्त एक हजार रूपये का चैक " थैंक्स-गिविंग-फंड " में भेजने की व्यवस्था करने लगे । "[23]

यहां लेखक ने बड़ी कुशलता से यह व्यंजित किया है कि चारों दान देते हैं , पर उनमें सच्चा दान तो गरीब चन्दूलाल का ही है जो रमजू की आर्त-पुकार सुनकर द्रवित होते हुए अपनी जेब के अंतिम पैसे को दे देता है । इस पैसे से वह अपनी लड़की के लिए दाल-सेब ले जाना चाहता था । देखरेx दूसरे ये सब किसी-न-किसीको

HANSA MEHTA LIBRARY 23
Maharaja Sayajirao University of Baroda

देते जरूर है , पर अलग-अलग तरीकों से , अलग-अलग झांसों में । राम-चन्द्र धर्मभीरूता के कारण संन्यासी को सवा रूपया देते हैं । ज्योति-प्रसाद रमजू और संन्यासी दोनों को नहीं देते , या कहिए कि उनके झांसे में नहीं आते , तो वे अनाथाश्रम वाले डेपुटेशन के चक्कर में आकर पच्चीस रूपये का गच्चा खा जाते हैं । यहां लेखक बुद्धिजीवियों की दोगली सोच पर सूक्ष्म व्यंग्य करते हैं कि भिक्षावृत्ति के खिलाफ़ उपदेश देनेवाले ज्योतिप्रसाद अनाथाश्रम के लिए दान देते हैं । रायसाहब हुकूमतराय जो रमजू , संन्यासी या डेपुटेशन किसीके झांसे में नहीं आते वे अपनी "रायबहादुरी" के लोभ में कमिश्नर को एक हजार का चेक खुशी-खुशी काट देते हैं । "दान" की रकम क्रमशः बढ़ती गई है -- एक पैसा , सवा रूपया , पच्चीस रूपये तथा एक हजार रूपये । एक पैसा "दान" के रूप में दिया जाता है , सवारूपया "दान" नहीं पर धर्मभीरूता है , पच्चीस रूपये अनमने भाव से दिए जाते हैं - ना न कह सकने की बुद्धि-वादी मजबूरी के कारण , एक हजार रूपये बड़े शौक से दिए जाते हैं -- प्रतिष्ठा , स्टेटस , झूठी शानोशौकत के लिए । इस प्रकार प्रस्तुत कहानी में लेखक ने भिन्न-भिन्न स्तर के लोगों की भिन्न-भिन्न प्रकार की मनोवृत्तियों का अच्छा खाका खींचा है ।

भय :
====

"भय" कहानी जैनेन्द्रीय-शैली की कहानी प्रतीत होती है । "किसी भेदिये ने भेद दिया और दुश्मनों ने दुश्मनी निकाली । " इस वाक्य के साथ कहानी का प्रारंभ होता है । इसी एक वाक्य के कारण ही पाठक के मन में उत्सुकता पैदा हो सकती है कि किस भेदिये ने भेद खोला और कौन-से दुश्मनों ने दुश्मनी निकाली ? कैसे निकाली ? क्यों निकाली ? आदि आदि । कहानी में मुख्यतः तीन पात्र हैं -- दीवान , मनभरी और मनभरी का देवर । मनभरी के गौने को चार साल हुए हैं और उसकी गोद में एक छोटा-सा बच्चा खेल रहा है । मनभरी का पति दीवान जरा-सी तकरार पर फौज में भर्ती होकर विलायत चला गया था और अब वहां से उसकी चिट्ठियां आती

रहती थीं । मनभरी का देवर अभी तरुण था । मनभरी चाहती थी कि उसकी ही छोटी बहना से उसकी शादी हो जाय , परंतु देवर भाई की अनुपस्थिति में यह ब्याह करना नहीं चाह रहा था । वह भैंसों को चराता था , खेतों को जोतता था , खेतीबाड़ी तथा भैंसों के दूध से उनकी गुजर-बसर अच्छी तरह हो रही थी । किसी प्रकार की कोई कमी नहीं थी । परंतु एक दिन देवर कालकाजी के मेले में जाता है । मनभरी रात में अकेली थी । तभी लुटेरे उसके घर पर धावा बोल देते हैं । मनभरी कोठरी में घुस जाती है , पर बच्चा बाहर रह जाता है । वे उसे धमकी देते हैं कि यदि वह कोठरी नहीं खोलेगी तो वे बच्चे को मार डालेंगे । एक तरफ बच्चा , दूसरी तरफ इज्जत । मनभरी पेशोपेश में पड़ जाती है । बच्चा का टेंटुआ कुछ ज्यादा दब जाने से वह मर जाता है । मनभरी दरवाजा नहीं खोलती । उसे तोड़ दिया जाता है । उसके बाद क्या हुआ , मनभरी नहीं जानती । इस घटना का वर्णन लेखक ने बड़े सांकेतिक ढंग से किया है — " उसका सबकुछ लुट गया । अब वह क्या करे — कहां जाय — कौन उसे बचावे ? उसकी सारी निधि छिन गई , उसके राजा-से पति की धरोहर हड़प ली गई , उसका लाल उससे छिन गया । किसके लिए अब वह रहे ? " [24]

उपरोक्त कथन से ज्ञात होता है कि लुटेरों ने केवल धन-दौलत और उसकी भैंसों की ही चोरी नहीं की थी , बल्कि उसकी इज्जत को भी लूटा था । अतः मनभरी आत्महत्या के विचार से रेल की पटरी की ओर जाती है । लेखक ने यहां उसकी स्मृतियों के सहारे उसके सुखी दाम्पत्य जीवन का चित्रण किया है । लाइन पर बैठे-बैठे फिर वह यादों और विचारों के चक्कर में खो जाती है — " वह सुखी जीवन , मस्ती के दिन , राजा की सूरत , शिशु का जन्म ! वह जीवन कहां गया ? वह सुख अब काहे को मिलेगा ? कौन उसे अब नींद में गुदगुदायेगा ? कौन उसे नये कपड़े पहनाकर मेले में ले जायेगा ? खेत पर रोटी-साग लेकर किसे खिलाने जाएगी ? हर सोमवार को किसकी चिट्ठी की प्रतीक्षा करेगी ? .... उसका मालिक

फ्रांस में है । दसों हजार मिल परे — रेल , जहाज , सबके बाद । वह कैसी हौंस की चिट्ठियां भेजता है ! उसे क्या पता — अब आगे चिट्ठी लेने वाली नहीं है । .... यह भी तो लिखा था , जान यहां आकर प्यारी लगती है । तुमको देखने के लिए जी भटकता है । जल्द आकर ... " 25

यहां लेखक ने इस तथ्य की ओर भी पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है कि बावजूद इस सारे अत्याचार के लोग मनभरी और उसके पति पर ही टीका-टिप्पणियां करेंगे । जो हुआ उसमें मनभरी का कोई दोष नहीं है , परंतु सजा उसको ही भुगतनी पड़ेगी । लेखक ने मनभरी के अन्तर्द्वन्द्व का अच्छा चित्रण किया है — " सब उसकी हत्या पर टीका-टिप्पणी करेंगे । तरह-तरह के अनुमान लगाये जायेंगे । घर में चोरी हो गई , किवाड़ टूटे मिलेंगे , दरवाजे खुले मिलेंगे । लोग उसके कलंक का अनुमान कर लेंगे । इसके अतिरिक्त ... ओह ! ... सारे खानदान पर कलंक लगेगा । उसका राजा कहीं मुंह दिखाने लायक न रहेगा । देवर का ब्याह रुक जायेगा । बिरादरी दोनों का हुक्का-पानी बन्द कर देगी । बेचारों का जीवन नष्ट हो जायेगा .... । ओह ! " 26

यहां लेखक ने प्रकारान्तर से हमारे समाज के दकियानूसी खयालों पर चिकोटी काटी है कि जब किसी स्त्री पर बलात्कार होता है तो उसमें उस बेचारी का लेश-मात्र अपराध न होते हुए भी लोग उसे तथा उसके संबंधियों को लांछित करते हैं । सजा शिकारियों को मिलनी चाहिए , पर हमारा अन्यायी ढोंगी समाज शिकार को ही सजा दिलाने पर आमादा हो जाता है ।

मनभरी आत्महत्या करने जाती है पर रेल आने पर वह किसी तरह दूर छिटक जाती है । तब रात्रि में उसे सांप दिखाई देता है । उसके मुंह से चीख निकल जाती है । पेड़ पर उसे कोई भूत का बासा नजर आता है और थोड़ी दूरी पर उसे एक दैत्य

दिखाई पड़ता है । उसके बाद वह अचेत हो जाती है । सवेरे लोगों ने आकर देखा कि एक औरत रेल की लाइन से पच्चीस गज परे नीम-मुर्दा हालत में पड़ी है । उसके पास ही रस्सी का एक टुकड़ा और पेड़ पर एक बड़ा-सा बन्दर पाया गया । थोड़ी दूर पर दो शहतीरों पर एक पहिया लगा हुआ था । कुंए से पानी निकालने के लिए यह व्यवस्था की गई थी । अतः मनभरी के सांप , भूत और दैत्य का खुलासा लेखक इस प्रकार दे देता है । कहानी के अंत में लिखा गया है — " जिस भय ने मानुषी को साक्षात् रण-चण्डी का रूप दे दिया था ; उसी भय ने रस्सी को सांप , बन्दर को भूत और निर्जीव काठ के शहतीर को दैत्य बना दिया । " [27]

परंतु इस अंतिम खुलासे से कहानी का सारा मज़ा ही किर-किरा हो जाता है । इससे यह प्रतीत होता है कि मनभरी (मानुषी ?) की इन भ्रांतियों की भांति वह भी एक भ्रांति ही थी जिसमें वह सामाजिक कलंक के डर से आत्महत्या के लिए भाग खड़ी हुई थी , जबकि यह हमारे समाज की एक क्रूर सच्चाई ही है कि ऐसी स्थितियों में बलात्कृत स्त्री को ही लोग कलंकित करते हैं । सम्पूर्ण कहानी में मनभरी का उल्लेख है , फिर अंत में वह "मानुषी" कैसे हो गई ? दूसरे पृ. 26 पर मनभरी का जो आत्मसम्भाषण है वह भी भ्रांतिपूर्ण है , यथा — " खेत पर रोटी-साग लेकर किसको खिलाने जायेगी ? हर सोमवार को किसकी चिट्ठी की प्रतीक्षा करेगी ? " [28]इससे तो ऐसा लगता है कि मानो मनभरी का पति दीवान मर गया हो । तीसरे जब कहानी का प्रारंभिक वाक्य है — " किसी भेदिये ने भेद दिया, और दुश्मनों ने दुश्मनी निकाली । " तो इसका कोई खुलासा कहानी में होना चाहिए जो नहीं है । ये कुछ कमियां इस कहानी में इसलिए खटकती हैं कि अन्यथा यह कहानी बड़ी अच्छी बन पड़ी है ।

दुनियादारी :

प्रस्तुत कहानी में हमें लेखक के विस्तृत जीवनानुभव झलक मिलती है । कहानी का सार-सन्दर्भ बस इतना है कि पढ़ा

लिखाई अपनी जगह है, परंतु व्यवसाय या वकालत केवल पढ़ाई के बुते पर नहीं चलते, उसके लिए तो चाहिए दुनिया का अनुभव -- दुनियादारी। कमलाकर एल.एल.बी तो कर जाते हैं, पर वकालत नहीं चलती और इसका कोई प्रभाव भी उन पर नहीं पड़ता, यदि उनके बड़े भाई को व्यापार में घाटा नहीं जाता। बड़े भाई अधिक पढ़े नहीं थे, पर दुनियादारी का ज्ञान उन्हें ज्यादा था। रूई के सट्टे में लाखों रूपये कमाये और घर को सोने से भर दिया, परंतु किस्मत का पहिया एक बार ऐसा रपटा कि संभलना मुश्किल हो गया। लाख की दौलत राख हो गई। बहुतों ने उनको समझाया -- "दरख्वास्त दे दो। बड़े-बड़े दे रहे हैं। कौन ऐसा करोड़पति है, जिसके नाम पर दिवाले की मुहर नहीं लगी है? आखिर मर्यादा बचाकर भूखों जान देनी पड़े, तो क्या बात रही? ... अपना ख्याल न करो, कुटुम्ब की तरफ तो देखो।" [29] परन्तु बड़े भाई के दिल पर इन बातों का कोई असर न हुआ। उन्होंने सर्वस्व गंवाकर भी लेनदारों का चुकाया और जब कुछ भी शेष न रहा तो मुंह छिपाकर घर में जा बैठे।

इस घटना ने घर का नक्शा ही बदल दिया। छोटे भाई का पढ़ना छूट गया और उसे एक अर्द्ध-सरकारी संस्था में बीस रूपये महीने की नौकरी करनी पड़ती है। कमलाकर ने पहले वकालत के लिए प्रयत्न किये, पर उसमें सफलता न मिलने पर ससुराल की सहायता से चार-पांच हजार की पूंजी से स्टेशनरी की दुकान शुरू कर दी। काम मिलता गया और कमलाकर का व्यवसाय चल निकला। परिवार की गतश्री लौटती नज़र आ रही थी, परंतु कमलाकर पासा-चित्त खिलाड़ी थे। यों उम्र तीस के करीब पहुंचती थी और एक बच्चे के बाप भी थे, पर तबियत से अल्हड़पन और तुनकमिजाजी दूर न हुई थी; न स्वभाव में उस ठण्डी सहनशीलता का विकास हुआ था, जो एक व्यापारी को बड़े-से-बड़े संकट के समुद्र से भी साफ़ उबार ले जाती है।

सफलता का नशा कमलाकर को बदमिजाज करता गया । छोटे आर्डर उन्हें जंचते ही नहीं थे । बड़े आर्डर देने वाले दफ्तर के मैनेजरों से भी उनकी बातचीत का ढंग अच्छा न होता था । नौकरों से भी अच्छा व्यवहार नहीं था । ऐसे में एक बार बर्नहम कम्पनी के मैनेजर जानसब साहब से बेरूखी का व्यवहार कर गये । जानसन को कमलाकर का यह व्यवहार अखर गया और हफ्ते भर में तो ऐन मार्केट में किसी योरोपीयन ने स्टेशनरी की बड़ी भारी दुकान खोल डाली । कमलाकर की हालत पतली होती गई । एक बार जो "डाउन फाल" शुरू हुआ तो कमलाकर लुढ़कते ही गये और अन्त में नौबत दिवालेपन पर आ गयी । लेनदारों के तकादे बढ़ते गये । बड़े भाई साहब यह सब देख रहे थे । एक दिन कमलाकर घर नहीं आये । दुकान पर ही आंसुओं से तकिया भिगोते रहे । सुबह सात बजे किसीने दरवाजा थपथपाया तो कमलाकर ने सोचा कि जरूर कोई तगादेवाला होगा । परंतु दरवाजा खोला तो कमलाकर दंग रह गये । चार वर्ष पहले वाले लिबास में बड़े भाई साहब उनके सामने खड़े थे—
" वही रेशमी शेरवानी , फेल्ट टोपी , चूड़ीदार पायजामा , उंगलियों में जड़ाऊ अंगूठियां , जेब में सोने की चेन , बाल सलीके से बने हुए , आंखों में सुरमा , मुंह में पान और चेहरे पर नूर बरस रहा था । " 30

बड़े भाईसाहब मुस्कराकर भीतर आये और कमलाकर को स्नेह से कहने लगे — " अभी बच्चे ही रहे न । लाओ , तिजूरी की चाबी मुझे दो और खबरदार , जब तक मैं न बुलाऊं दुकान पर पैर न धरना । जाओ घर जाओ — सब सूखे जा रहे हैं । " 31 ध्यान रहे इधर कमलाकर का व्यवहार बड़े भाई के प्रति भी रूखा-रूखा सा हो गया था । वे स्वयं को घर का कुलमुखतार समझने लगे थे । आठ दिन में तो बड़े भाईसाहब ~~मे×लके×दूकरम×करके×~~ ने कायापलट कर दी । जानसब साहब से तालमेल ~~बिठा×लिया~~ बिठा लिया । सब लोगों को अपने व्यावसायिक लटकों से वश में कर लिया । आठवें दिन कमलाकर को बुलाकर विषण्ण भाव से कहा — " अट्ठाईस हजार के नोट रक्खे हैं ; दस बजते ही बैंक भेज देना । ... कुछ नये आर्डरों का एडवान्स है ; बाकी सेल हुई ।

बस , अब जाता हूं ; जीता रहा तो आ मिलूंगा । अपनी भाभी का खयाल रखना । "[32] कमलाकर जब पूछते हैं कि आप जा कहां रहे हैं , तो विषण्ण हंसी हंसकर जवाब देते हैं -- " तीर्थाटन करूंगा । तुम्हारे काम के लिए मुझे शराब छूनी पड़ी । "[33]

पैसे दर्शन मिलनेवाली नकली नोटों के बंडल तथा अपनी व्यावसायिक मीठी चक्करदार भाषा के बल पर बड़े भाईसाहब ने यह करिश्मा कर दिखाया था । यों तो यह व्यापार के उतार-चढ़ाव की कहानी है , पर इसमें अनेक स्थानों पर हमें मानवीय संस्पर्श का अनुभव होता है । बड़े भाईसाहब का व्यवसाय जब टूट जाता है , तब सबके व्यवहार में फरक आ जाता है , उनकी पत्नी के साथ के व्यवहार में फरक आ जाता है , यहां तक कि छुटकू भी उनसे ढंग से नहीं बोलता , इतना ही नहीं घर की बदहाली के लिए वह उनको ही जिम्मेदार मानता है । अतः दुनियादारी के दोनों रूप इसमें हमें दृष्टिगोचर होते हैं ।

स्वर्ग की देवी :

कहानी के प्रारंभ में ही लेखक स्पष्टता कर देते हैं -- "बंसीलाल जैसे अनेक उदाहरणों के कारण मैं इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि सार्वजनिक संस्थाओं का पदाधिकारी होना नैतिक चरित्र की उच्चता का सुबूत नहीं । मतलब यह कि बंसीलाल नगर-कमेटी के प्रधान हैं थे ; और उनके जीवन की एक बहुत भयानक घटना का उल्लेख इस कहानी में होगा । "[34]

भूमिति में प्रमेय नामक एक रचना हुआ करती है । उसमें एक विधान के अन्तर्गत कोई गाणितिक सत्य दिया जाता है और उसे तर्कसहित प्रमाणित करना होता है । यहां भी लेखक के प्रारंभिक वक्तव्य में यह ठोक-पिटकर बता दिया गया है कि बंसीलाल एक दुश्चरित्र व्यक्ति है । हमारे देश में पहाड़ों तथा ग्रामीण विस्तारों में इतनी गरीबी है कि कुछ मां-बाप अपनी बेटी का विवाह नहीं कर

सकते । ऐसे लोग कुछ पैसे लेकर अपनी बेटी का विवाह किसीके भी साथ कर देते हैं । कुछ वर्ष पहले एक पत्रकार ने लिखा था कि हमारे यहां आज भी लड़की को बेचा-खरीदा जाता है और उसे प्रमाणित करने के लिए वह सचमुच में मध्यप्रदेश के एक आदिवासी विस्तार से कमला नामक लड़की को खरीद कर लाया था । शैलेश मटियानी ने कुमाऊं प्रदेश को लेकर अनेक कहानियां लिखी हैं । उन कहानियों में [illegible] भी लड़कियों की खरीद-फरोख्त के कई किस्से मिलते हैं । [35]

मेमो एक ऐसी ही लड़की है । लेखक उसके मुतल्लिक लिखते हैं--- "उस युवती के अतीत में कोई रहस्यपूर्ण गाथा निहित नहीं थी । न वह सामाजिक अत्याचारों से सताई जाकर पतित हुई थी , और न किसी भगतिन कुटनी के फन्दे में पड़कर ही इस रास्ते पर आई थी । असली अर्थ में मेमो को वेश्या नहीं कहा जा सकता । वह तो उस अभागी जाति की एक कुमारिका थी , जो अपनी अशिक्षा , अपने दुर्भाग्य और अपने कुसंस्कारों के कारण हमारे सभ्य समाज से बहुत पीछे छूट गई है , या बहुत ऊंचे रह गई है , और जिसकी ललनाएं हमारे लोलुप " सभ्य-समाज " की कामुकता का साधन बनती है । " [36]

बंसीलाल नगर-कमेटी के प्रधान है । अर्थात् सार्वजनिक जीवन से जुड़े हुए व्यक्ति हैं । एक बार वे नैनीताल गए तो वहां के किसी गांव से एक सुंदर लड़की को खरीद लाये । पहाड़ों की लड़कियां वैसे भी अपनी खूबसूरती के लिए प्रसिद्ध हैं । कुछ दिन तो नैनीताल के किसी होटल में ठहर गये । मेमो बेचारी गभरू थी , कमसीन , नादान और मासूम थी । वह तो बंसीलाल को अपना देवता मानती है । काफी दिन मौज-मजे करके बंसीलाल जब उसे अपने यहां ले आते हैं तब समस्या सामने आती है , क्योंकि बंसीलाल विवाहित हैं और अपनी पत्नी से कुछ डरते-दबते भी हैं । अतः उसे अपने बगीचे के एक अलग मकान में रखा जाता है । पर ऐसी बातें छिपती थोड़े हैं । बंसीलाल के एक दूर के साले साहब बिरजू

हैं, वह अपनी बहन के लिए जासूसी का काम करते हैं। बिरजू ही गृहिणी को मेमो के विषय में बताता है। बंसीलाल पहले तो टालमटोल कर करते हैं, फिर गृहिणी को बताते हैं कि वह बेचारी दुखिया है, अतः किसी योग्य पात्र के मिलते ही उसके साथ उसका ब्याह करवा देंगे। मेमो के लिए बिरजू भी लालायित रहता है, इस कारण से भी वह जीजा की जासूसी ज्यादा करता है। योग्य पात्र ढूंढने के बहाने बंसीलाल दिन भर गायब रहते हैं और मेमो के साथ रंगरेलियां मनाते हैं। मेमो यह समझ नहीं पाती है कि बंसीलाल रात में उसे अकेला छोड़कर क्यों और कहां चले जाते हैं। जब पत्नी का दबाव बढ़ जाता है और अपनी बात खुल जाने का भय लगता है तब बंसीलाल उसे और कहीं किराये के मकान में छोड़ आते हैं। पर बिरजू वहां का पता भी लगा लेता है और एक दिन अपनी बहन को लेकर मेमो के पास पहुंच ही जाता है। गृहिणी से सब सुनकर मेमो तो हतप्रभ-सी हो जाती है। गृहिणी उसे कहीं अच्छा स्थान देखकर विवाह कर लेने की सलाह भी दे डालती है। मेमो किंकर्तव्यविमूढ़ की भांति सब देखती-सुनती रहती है और अंततः बाहर चल देती है। गृहिणी को दया आ जाती है। वह उसे अपने कुछ गहने दे देती है। गृहिणी का मन रखने हेतु गहने तो वह रख लेती है, पर बाद में जमुनाजी में फेंक देती है। कहानी के अन्त में बताया है कि सत्याग्रहियों का कोई जुलूस निकलता है। बंसीलाल सवेरे से ही व्यस्त हो गए हैं। गृहिणी भी उस जुलूस में हिस्सा लेती है। जुलूस में लाठियां चल जाती हैं। एक लाठी से गृहिणी का सिर फूटने ही वाला था कि अचानक मेमो बीच में आ जाती है। उसका सिर फट जाता है और वह मर जाती है। लोग जमा हो जाते हैं। बंसीलाल भी उनमें हैं। वे गृहिणी को पूछते हैं — "कौन थीं?" और भी बहुत से पूछते हैं — "कौन थी?" तब गृहिणी सिर उठाकर कहती हैं — "स्वर्ग की देवी।"[37]

प्रस्तुत कहानी का बंसीलाल भ्रष्ट है, परंतु अभी बेशरम और ढीठ नहीं हुआ है। हमारे आज के नेताओं के पतन की शुरूआत

कब और कैसे हुई उसके बीज हमें प्रस्तुत कहानी में मिल जाते हैं ।

संयोग :

यह एक लंबी कहानी है । कहानी का शीर्षक "संयोग" है और कहानी में सबकुछ संयोग की भांति ही होता है । कहानी दश परिच्छेदों में विभक्त है, परंतु कहानी का सत्व तो केवल सातवें परिच्छेद से ही शुरू होता है । कहानी कुछ यों चलती है । ब्रजमोहन सुलतानगंज जिले के पटवारी के सुपुत्र हैं । मैट्रिक पास करते ही पटवारीजी उसके पीछे पड़ गये, ब्याह के लिए । ब्रजमोहन ने आजीवन अविवाहित रहने का ठान लिया था । उस युग में बहुत से पढ़े-लिखे युवक ऐसा सोचते थे । अतः हम ब्रजमोहन को एक आदर्शवादी भावुक किस्म का युवक कह सकते हैं । विवाह से बचने के लिए वह घर से भाग कर दिल्ली आ जाता है और रेलवे में चालीस रूपये की नौकरी स्वीकार लेता है । समय मन्दे का था, अतः अकेले आदमी के लिए चालीस रूपये भी काफ़ी से ज्यादा हुआ करते थे । कोई दूसरा होता तो मजे से महीने में बीस रूपये बचा सकता था ।[38] परंतु ब्रजमोहन थोड़ा मनमौजी प्रकार का था । रूपये-पैसे बचाने के लन्द-फन्द में वह अभी पड़ा नहीं था ।

एक दिन वह जंतर-मंतर की तरफ़ घूमने निकल गया । आते समय एक कुत्ता उसके साथ हो लिया । पहले तो ध्यान न दिया, पर बाद में उसे लेकर वह तरह-तरह से सोचने लगा । कुत्ते के गले में जो पट्टा था उसमें निकल के एक छोटे-से टुकड़े पर लिखा हुआ था -- "डी.एम.सी. 84" -- अर्थात् "दिल्ली म्युनिसिपल कमेटी" । उस दिन इतवार न होता तो वह उसे उक्त पते पर छोड़ आता । अतः चोरी के इल्जाम से बचने के लिए वह उसे थाने छोड़ने जाता है, परंतु वे लोग ब्रजमोहन की वल्दियत और मूल अता-पता पूछते हैं, ब्रजमोहन बताना नहीं चाहते, अतः वे लोग उसकी रिपोर्ट दर्ज नहीं करते । थाने का समूचा दृश्य दृश्य वास्तववादी और व्यंग्यपूर्ण है । लेखक ने उसमें हमारी पुलिस की कार्य-क्षमता पर काफ़ी व्यंग्य से काम लिया है, परंतु इस पूरे प्रसंग की कहानी में कोई आवश्यकता नहीं थी ।

बहरहाल ब्रजमोहन कुत्ते के मालिक को खोजने जंतर-मंतर राय-सीना की तरफ़ निकल पड़ता है । रायसीना की ओर बढ़ते ही एक मकान के बरामदे में खड़ी औरत ने कुत्ते को पहचान लिया । वह उस मकान में नौकरानी थी और यह उसके मालिक का कुत्ता था — जैक । ब्रजमोहन तो तुरंत लौट जाना चाहता था , परंतु बड़े सरकार — डा. जी.एस. भटनागर — ने उसे रोक लिया । उस बंगले का वातावरण उसे बड़ा रहस्यमय लगा । पता चला कि उस घर में उस दिन एक संक्षिप्त-सा विवाह-अनुष्ठान था । ब्रजमोहन ने एक लच्छेदार घुघराले बालों और गोरी पिण्डलियों वाली लड़की के रोने की आवाज़ एक कमरे से सुनी थी । अचानक बड़े सरकार को कहीं जाना पड़ता है । उसके बाद ब्रज-मोहन की भेंट बड़े सरकार के बेटे भूषण से होती है । भूषण तथा पंडितजी से उसे ज्ञात होता है कि बड़े सरकार भूषण की बहन प्रतिभा का ब्याह एक बूढ़े से करने जा रहे हैं । लड़की के बिलखने और संक्षिप्त-ब्याह का रहस्य वह अब समझने लगा है । भूषण तथा पंडितजी ने मिलकर एक योजना बनाई है । वह उसका ब्याह रामप्रताप नामक एक युवक से कराने जा रहे हैं और इसमें वे ब्रजमोहन का सहयोग भी चाहते हैं । बड़े सरकार को उस योजना के तहत ही थोड़े समय के लिए किसी बहाने बाहर भेज दिया जाता है ।

परंतु ऐन वक्त पर वह लड़का धोखा दे जाता है । वह एक संक्षिप्त-सा पत्र भेज देता है — " भूषण , मुझे माफ़ करना । पिताजी इसx इस शादी के पक्ष में नहीं है । मैं उनकी मर्जी के खिलाफ़ नहीं जा सकता । मुझे अपनी इस दुर्बलता के लिए बड़ा खेद है । — रामप्रताप "[39]

अब भूषण तथा पंडितजी दोनों सोच में पड़ जाते हैं । अंत में वे ब्रजमोहन को ही इस कार्य के लिए तैयार कर देते हैं । ब्रजमोहन पहले तो मना करता है और अपने अविवाहित रहने के प्रण की भी बात करता है , परंतु एक लड़की के भविष्य को सुधारने की आदर्शवादी बात तथा प्रतिभा के सौन्दर्य की एक झलक जो उसने देखी थी , उसके सामने उसका

वह निर्णय पानी-पानी हो जाता है । इसका बड़ा मनोवैज्ञानिक चित्रण लेखकxलेxकियाxहैxxxxx लेखक ने किया है । पंडितजी ब्रजमोहन को समझाते हुए कहते हैं — " देखिए , आप से मेरा परिचय नहीं है , पर आप मेरे लड़के के बराबर हैं , इसीसे कहता हूं । इस वक्त एक निर्दोष बालिका की रक्षा करने में आपको पूरी मदद देनी चाहिए । मुझे ही देखिए , बड़े बाबू का वर्षों का परिचित हूं , तो भी , औचित्य-पालन के लिए , उनके अहित पर उतारू हो गया हूं । आपको एक सच्चे नौजवान की तरह हम लोगों की मदद करनी चाहिए । " [40] इसके उपरांत फिर लेखक की टिप्पणी है -- " ब्रजमोहन का इरादा खोखला हो चुका था । अब इस बात ने और उस लच्छेदार बालों वाली की याद ने वह आंधी चलाई कि सबकुछ जड़-समेत गायब हो गया । " [41]

इस प्रकार प्रस्तुत कहानी में " संयोग " के कई प्रसंग हैं , जैसे — 1. कुत्ते का उसके पीछे-पीछे घर तक आना , 2. कुत्ते के गले में संक्षिप्त पता होना 3. थानेवालों की अस्वीकृति , 4. रायसीना में कुत्ते के असली मालिक का पता चल जाना , 5. ब्रजमोहन का पहले आराम के लिए और फिर ब्याह में सम्मिलित होने के लिए रुक जाना , 6. ऐन मौके पर रामप्रताप का बिदक जाना आदि आदि । वह गांधीवादी युग था । अतः वृद्ध-विवाह रोकने हेतु बहुत से युवक जात-पांत या दान-दहेज के बिना ऐसे विवाह करते भी थे । अतः कहानी अपने आप बड़ी सशक्त है । केवल उसका अनावश्यक विस्तार थोड़ा अखरता है , क्योंकि उससे उसकी प्रभावक-शक्ति को व्याघात पहुंचता है । आंग्ल-विवेचक एडगर एलन पो ने कहानी के सन्दर्भ में कहा है — " ए शोर्ट-स्टोरी इज़ नेरेटिव शोर्ट इनफ़ टु बी रेड इन ए सिंगल सिटिंग , रीटन टु मेक एन इम्प्रेशन ओन द रीडर , एक्सक्लुडिंग आल धेट इज़ नोट फारवर्ड धेट इम्प्रेशन . " [42]

अतः यदि लेखक ने भीमदृष्टि के स्थान पर "अर्जुन-दृष्टि से काम लिया होता तो कहानी और भी सशक्त एवं प्रभावक होती । कुछ भी हो , प्रस्तुत कहानी में लेखक के विस्तृत जीवनानुभव का परिचय पाठक को हुए बिना नहीं रहता ।

मन का पाप :
===========

हिन्दी कहानी का जन्म ही एक खास तरह की घरेलू सामाजिकता के बीच से हुआ है , अतः मनोरंजकता के अलावा कहानियों में सामान्य पारिवारिकता , घरेलू समस्याओं और विश्वसनीय परिस्थितियों का आग्रह भी झलकता है ।[43] ऋषभजी की कहानियों में हमें उक्त विशेषताएं प्राप्त होती हैं । "मन का पाप" भी इसी प्रकार की एक कहानी है । इस कहानी के बाबू अमरनाथ तीस वर्ष की उम्र में विधुर हुए थे । अठारह वर्ष की आयु में उनका विवाह हुआ था और पूरे बारह वर्ष के दाम्पत्य जीवन के बाद उनकी पत्नी चल बसी थी । परंतु इन बारह वर्षों में अमरबाबू पत्नी के क्लेश के गले तक आ गए थे , अतः उसकी मृत्यु पर उन्होंने चैन की सांस लेते हुए आगे आजीवन अविवाहित रहने का ठान लिया था ।

अतः जो भी व्यक्ति उनसे शादी की बात करता उससे वे बुरी तरह से चिढ़ जाते थे । उनकी एक वयस्क साली थी । ससुर , सास , साले सभीने बड़ी मिन्नतें की , पर वे टस से मस न हुए । दोनों बच्चों को छोड़× ससुराल में छोड़कर वे मस्ती से जीने लगे । खूब खाते-पीते , दण्ड-बैठक लगाते , पहलवानी करते , ईश्वर-भजन करते और औरत के नाम से सदा कोसों दूर भागते । एक बार करीमखां उस्ताद ने जरा कह दिया कि बेटे अब घर-गृहस्थी की सोचो , तो उस दिन से अखाड़े में जाना छोड़ दिया ।

दफ्तर के बड़े-बाबू से उनकी अच्छी घनिष्ठता थी । एक दिन बातों ही बातों में वे कहने लगे — " भाई , शादी तुम्हें करनी ह ही चाहिए ।" शायद कुछ ऐसी बात भी कह दी थी कि उनके जैसे बलिष्ठ आदमी का स्वच्छन्द रहना समाज के लिए घातक हो सकता है । "[44] इस बात पर ऐसे बिगड़े कि दफ्तर की नौकरी छोड़कर एक जगह मुनीमी कर ली । खाने की समस्या थी तो एक ब्राह्मण महोदय को खोज निकाला जो सिर्फ रोटी-कपड़ा लेकर घर के तमाम

काम करने को तैयार था । बाबू अमरनाथ ने उसे रख लिया , पर वह सीधा-सादा , गरीब , ईमानदार , धर्मभीरू ब्राह्मण अमरनाथ को चूना लगाकर चला गया ।

दूकान के मालिक जहाँ अमरनाथ काम करते थे , उनकी प्रकृति को जानते थे । उन्हें मालूम था कि अमरनाथ शादी के नाम से ही चिढ़ते हैं , सो उन्होंने दूसरा रास्ता अपनाया । "वह सलाह यह थी कि मालिक की मिसरानी काफ़ी बूढ़ी हो गई थी । उसकी एक विधवा लड़की थी । बेचारी गरीबनें थीं । दोनों को रोजगार मिलते रहने से बड़ा पुन्न होगा । अमरनाथ चाहें तो दोनों में से किसी एक को रख सकते हैं । दोनों की विश्वस्तता की गारण्टी मालिक देंगे । वेतन सिर्फ़ दो रूपए देना होगा । बाकी मदद मालिक कर देंगे । " [45]

मालिक ने मिसरानी को बूढ़ी बताया था , पर वह पैंतीस के आसपास की थी । वर्ण गौर था , पर मैले कपड़ों के कारण मलिन दिखती थी । एक दिन मिसरानी मालिक के घर से नयी धोती लाई । पुरानी धोती सूखने डाल दी और नहा-धोके महीनों बाद नयी धोती पहनी । सहसा अमरनाथ आ गए । उन्होंने मिसरानी को पहली बार भर-नजर देखा । अमरनाथ के नेत्र झुक गए । नेत्र क्या झुके मानो सशरीर गड़ गए । स्वस्थ मुँह पर सुर्खी आ गई । शरीर कांप गया ।

अमरनाथ ससुराल जाकर अपने एक बच्चे को ले आये । फिर एक दिन क्या देखते हैं कि मिसरानी बच्चे को छाती से चिपकाए चटाई पर पड़ी सो रही थी । धोती सिर से और छाती से हट गई थी । वे कई मिनट खड़े रहे । स्तब्ध और अचंचल अविचल , जैसे पत्थर की कोई मूर्ति हो । और कहानी के अंत में लेखक ने संकेतात्मक ढंग से लिखा है — "कल उन्होंने मिसरानी को जवाब दे दिया है । अब , ब्याह करेंगे । क्या करेंगे , इसका पता हमारे अतिरिक्त और किसे हैं ? " [46] इस प्रकार जो अमरनाथ सीधी तरह नहीं मानते थे , उन्हें मालिक ने इस तरह मनवाया । सीधे बात करते शायद बात बिगड़ जाती ।

कौड़ियों का हार :

प्रेमचन्द ने कहानी के सन्दर्भ में साहित्य का उद्देश्य नामक निबंध में लिखा था — " वर्तमान आख्यायिका मनोवैज्ञानिक विश्लेषण और जीवन के यथार्थ और स्वाभाविक चित्रण को अपना ध्येय समझती है । उसमें कल्पना की मात्रा कम और अनुभूतियों की मात्रा अधिक होती है । इतना ही नहीं , बल्कि अनुभूतियां ही रचनाशील भावना से अनुरंजित होकर कहानी बन जाती हैं । "[47] अतः प्रेमचन्द युग में आकर हिन्दी कहानी पहली बार मानव-परिवेश और मानवीय व्यवहार को राजनीतिक-सामाजिक और आर्थिक प्रश्नों के निकट देखती है और नये सहानुभूतिपूर्ण विवेक से आदर्श और वास्तविकता के द्वन्द्व को पहचानना चाहती है ।[48]

प्रस्तुत कहानी उसी आदर्श और वास्तविकता के द्वन्द्व को बड़ी निर्ममता से हमारे समक्ष प्रस्तुत करती है । इस कहानी का परिवेश मिला-जुला है । प्रारंभ ग्रामीण परिवेश से होता है , फिर उस पर नगरीय परिवेश का दबाव बढ़ता है । कहानी के केन्द्र में तीन पात्र हैं —"मैं" , चुन्नी और धपिया । "मैं" गांव के साहनी और जमींदार का बेटा है । शैशव में उसके कई दोस्त थे , जिनमें एक भंगी , तीन चमार , तीन ब्राह्मण , और कितने ही माली , राजपूत , कुम्हार आदि के कुल-दीपक थे । पर "मैं" का सच्चा याराना तो चुन्नी भंगी से था । लोगों ने इन दोनों की दोस्ती में दरार पैदा करने के बहुतेरे प्रयत्न किए , पर उसमें कभी बाल बराबर फरक भी नहीं आया । धपिया उसकी बहन थी । स्वयं कहानी नायक "मैं" उसके बारे में कहते हैं — "यह भंगी की छोकरी ! मुझे याद नहीं , सौन्दर्य की क्या व्याख्या मेरे दिमाग में उस समय थी , पर मुझे वह बेहद भाई । चुन्नी के साथ दोस्ताना तो था ही , उसकी बहन से भी तबियत में उन्सियत पैदा होने लगी । इस लड़की को चौपड़ की कौड़ियों , और खिलौनों का बहुत शौक था । मैंने अक्सर घर से उसे बहुत-सी कौड़ियां ला दी थीं ।

कभी-कभी मिठाई , बताशे और खांड भी ला देता था । " [49] ये तीनों मिलकर अक्सर एक खेल खेलते थे , जिसमें धपिया दुल्हन बनती , नायक दुल्हा और चुन्नी कन्या के पिता का रोल अदा करता ।

नायक की आयु जब बारह वर्ष की हुई तब उनका परिवार गांव से शहर चला गया । जाते समय चुन्नी ने कहा था -- " आड़ी , देखो भूल न जाना । " [50] धोबिन , नाइन , मिसरानी , पुरोहितानी आदि सभी मां को मिल गये । नायक ने भी अपने सभी दोस्तों से खुशी-खुशी बिदा ले ली । गाड़ी जब गांव से काफ़ी दूर निकल आयी , तब अचानक गाड़ीवाला चिल्लाया । पीली ओढ़नी , लाल घघरी पहने धपिया गाड़ी के नीचे आने ही वाली थी कि गाड़ी वाले ने उसे रोक दिया । धपिया को देखते ही नायक उतर गया । धपिया उसके पैरों से लिपट गई । गाड़ीवाला चिल्ला उठा -- " अरे , भैया को छू लिया , रांड की रांड , अब नहाना पड़ेगा । " [51] तब मां ने कहा था -- " नहीं रे , नहाना-धोना क्या -- पानी छिड़क दूंगी, काफ़ी है । बच्चे हैं , साथ-साथ खेले हैं । परले गांव से आ रही होगी ; देखकर जी उमड़ आया । ... जा बेटी जा , अपने घर जा , हम लोग जल्दी ही लौटेंगे । राजी-खुशी रहियो । ले , यह मीठी पूरी ले ; खालीजियो । और यह चार पैसे ले , इनकी मिठाई खाइयो । " [52]

"मैं" शहर जाकर , वहां की पढ़ाई और परिवेश में रम गया । बरसों बाद गांव लौटने का इत्तफाक हुआ । धपिया ब्याह करके वापिस आ गई थी । उसका मरद उसे बहुत मारता था । एक दिन चुन्नी मिला तो भरे हुए कण्ठ से कहने लगा -- " आड़ी , जाती बेर के सब वादे भूल गये ? तुमने एक कागज भी न लिखा । मैं यहां किसी से पढ़वा लेता । मैं कई बेर शहर गया , तुमसे मिलने की कोशिश की , पर न मिल सका । दूकान पर तुम मिले नहीं । पूछता-पूछता स्कूल तक गया । वहां की शान-शौकत से डरकर मैं तुम्हारा नाम भी न ले सका । चपरासी ने मुझे मारकर बाहर निकाल दिया । " [53]

परंतु अहंकार से चूर्ण जमींदार के ग्रेजुएट बेटे में करुणा का संचार नहीं हुआ । सहसा कोई उसके पैरों में आ लेटा । वह धपिया थी । पति के घर को वह छोड़ आयी थी । शहर में "मैं" के लिए रिश्तों की बाढ़-सी आ रही थी और यह गंदी लड़की ! गन्दे कपड़े , मुंह से लार टपकती हुई , सड़ी-सी चुनरिया , गन्दी-सी घघरिया , सिर में गर्द भरी हुई , छाती में गुदने गुदे हुए । वर्षों की तपस्या में जलकर उसके सौंदर्य का सारा रस भी अब सूख चुका था । अतः उसके मुंह से बस इतना निकलता है -- " छिः गन्दी लड़की ! छिः चुड़ैल ! " [54]

इस पर उसने सिर उठाकर उसके पैरों पर कोई चीज़ फेंकी और चली गई । वह चीज़ उन्हीं कौड़ियों का तागे में पिरोया हुआ हार था, जिन कौड़ियों को वह माता-पिता से चुरा-चुरा कर उसे देता रहा था । नायक उस हार को अपने साथ ले आता है और अपने मेज की दराज में रख देता है । कभी-कभी उस पर नज़र पड़ जाती है । कहानी का अंत इस वाक्य से हुआ है -- " छिः पागल लड़की ! .... क्यों पाठक , भला वह पागल थी , या मैं पागल हूं ? " [55]

कहानी आत्मकथनात्मक शैली में है । उसमें लेखक ने एक साथ कई पहलुओं को लेखक ने तटस्थतापूर्वक रखा है । जात-पांत , ऊंच-नीच, अमीर-गरीब , अमीर की मुहब्बत , गरीब का प्यार , अस्पृश्यता , गांव के लोगों की दीन-हीन अवस्था से पीड़ित बुद्धिजीवियों का वन्ध्य आक्रोश आदि मुद्दों की पड़ताल लेखक ने कलागत निरपेक्षता के साथ की है । यहां वह प्रेमचन्दीय आदर्शवाद भी नहीं है । है केवल ठोस निर्मम यथार्थ और उसका इतना ही ठोस और यथार्थ चित्रण ।

पांच रुपये का कर्ज :

यह कहानी लेखक के प्रकाशकीय अनुभवों से व्युत्पन्न हुई है । संसार में कैसे-कैसे लोग होते हैं । कितने निरीह दिखते हैं , पर कितने रंगे हुए सियार होते हैं , कितने चंट और चालाक होते हैं । एक बार जिस

व्यापारी को चपट दी हो , पुनः उसे धोखा देना एक बामुश्किल काम होता है , पर यह बामुश्किल काम भी दीनदयाल बड़ी सिफ़्त से अंजाम देते हैं । यह कहानी भी आत्मकथनात्मक शैली में लिखी गई है । कहानी का नैरेटर "मैं" एक लेखक व प्रकाशक है । दीनदयाल उससे कुछ किताबें खरीदता है । वह अपने को एक अनुवादक बताता है । साहित्य और पुस्तकों का शौकीन भी बताता है । पहले तो पुस्तकें साथ ले जाने की बात करता है , पैसे मनीआर्डर से भेज देगा । पर लेखक की हिचकिचाहट को देखते हुए उसका वी.पी. कर देने के लिए कहता है । ऐसे में प्रकाशक लोग अक्सर पेशगी मांगते हैं , परंतु यहां दीनदयाल की बातों से प्रकाशक इतना प्रभावित है कि पेशगी की बात नहीं करता , बल्कि दीनदयाल ऊपर से पांच रूपये उससे बहाने बनाकर ले जाता है कि उसका बटुआ खो गया है और उसके पास इलाहाबाद जाने का किराया नहीं है । वह पांच रूपये भी उसी वी.पी. में जोड़ दिए जाएं । सत्ता-ईस रूपये सात आने के वी.पी. में पांच रूपये और जोड़ दिए जाते हैं । यहां इस बात का स्मरण रहे कि उस जमाने में पांच रूपये भी बहुत हुआ करते थे ।

वी.पी. वापिस लौट आता है । प्रकाशक की तरफ से कई पत्र जाते हैं , पर एक का भी उत्तर नहीं आता । पत्रों की भाषा कटु से कटुतर होती जाती है । अन्ततः प्रकाशक को वे पांच रूपये तथा वीपी. का खर्च भूल जाना पड़ता है । कुछ वर्ष गुजर जाते हैं । प्रका-शक को इलाहाबाद जाना पड़ता है । वहां संयोग से फिर दिन-दयाल से भेंट होती है । लेखक एक बार फिर दीनदयाल के रईसाना अंदाज से उसकी चपेट में आ जाता है । बूढ़े मारवाड़ी सेठ को फांस-ने में वह लेखक का एक साधन के रूप में इस्तेमाल करता है । सेठ बूढ़े होते हुए शादी के ख़ाहिशमन्द थे । उनसे तीन हजार रूपये ऐंठे जाते हैं । वह तीन हजार की थैली दीनदयाल सेठ के सामने लेखक को देता है । सेठ को बताया गया है कि वह लड़की का भाई है । लेखक को वह समझा देता है कि वह उसकी स्त्री को थियेटर दिखाना चाहता

है , पर लोकलाज के कारण दिखा नहीं सकता , तो वह उस स्त्री को थोड़े समय के लिए अपनी बहन मान लें । लेखक सहमत हो जाते हैं । सेठ को नाटक अच्छा नहीं लगता , अतः बीच नाटक ही वहां से एक बंगले में जाते हैं । वहां शादी की तैयारियां चल रही थीं । सुधारकों के डर से सेठ चुपके से शादी कर लेना चाहते थे । दीनदयाल अभी आया कहके ऐसा सरक जाता है कि घण्टों बीत जाते हैं । दीनदयाल और लड़की लड़की दोनों गायब थे । सेठ लेखक को पूछते हैं कि उनकी बहन कहां है । सारा भांडा फूटता है । वह रूपयों की थैली देखी जाती है तो सिवाय उसमें रद्दी कागज के टुकड़ों के और कुछ न था ।

कहानी का अंत यों है — " आखिर सब सिर पटकते रह गये ; किसीको धेला न मिला । एक बात कह देनी चाहिए । वह रेशमी थैली जब खोली गई , तो रद्दी कागजों के बीच में से पांच रूपये का एक नोट निकल आया , जिसे सेठजी ने तुरंत झपट लिया । उन्हें आशा हुई — शायद सौ का हो , या शायद और कुछ निकले । ... पर और कुछ न निकलना था न निकला । सुननेवाले कहते हैं — वह नोट गलती से रह गया , लेकिन मेरा खयाल है कि मेरा कर्ज चुकाने की कोशिश की गई थी । " [56] बाद में लेखक को यह भी मालूम हुआ कि वह स्त्री भी दीनदयाल की पत्नी न होकर मेरठ की एक वेश्या थी । इस प्रकार एक जालसाजी के केस को यहां कहानी का रूप दिया गया है ।

<u>रखैल :</u>

प्रस्तुत कहानी में भी हम लेखक के विस्तृत जीवनानुभव को देख सकते हैं । नन्दू एक ऐसा आदमी था , जिसे कुछ लोग बीस बरस की उमर में ही " फिलोसोफर " कहने लगे थे । बाप जब तक जिए , उनसे उसकी कभी बनी नहीं । न ब्याह किया , न रोजगार और न बूढ़े बाप को ही खुश किया । यों ही पचीस बरस गुजर गये । पिता का निधन हो गया । अब तो उसके आसपास ठट्ठ के ठट्ठ जमा होने लगे । जो उसे खब्ती कहते वे भी और जो उसकी फिलोसोफी के मद्दाह

थे वे भी । "शोक करने वाले दरअसल बधाई देने आये थे । सभी सबसे पहले और सबसे आगे अपना चेहरा रखना चाहते थे । सभी के होंठों से हंसी फूटती थी । सभी कीश आंखों में बधाई का गुलाल भरा हुआ था । " 57

पर नन्दू इससे खुश न हुआ । दुनिया की मनोवृत्ति पर उसे दुःख हुआ । कोई उसके आंसू पोंछने वाला नहीं था । कोई उसके दिल की असलियत न जानता था । वह समझ रहा था कि लोग प्रकट रूप से तो उसकी तारीफ कर रहे हैं , पर भीतर से उसे कपटी, धूर्त और छली समझ रहे हैं ।

अतः पिता की मृत्यु के बाद नन्दू कुछ समय के लिए बाहर निकल गया । जब आया तो लोगों ने शादी के लिए घेरना शुरू किया पर वह विवाह करके अपनी स्वतंत्रता में बाल बराबर भी फर्क न डालना चाहता था । सिगरेट , शराब और रण्डीबाजी में वह उलझ गया । चाटुकार कहते -- " उसे बुरा कहने वाले लोग नालायक हैं ! वह अब भी सच्चा , वैसा ही सच्चरित्र , वैसा ही रहमदिल और वैसा ही सहृदय है । " 58

जब पुतलीबाई से भी जी भर गया तो नन्दू कारोबार गुमाश्तों के सिर छोड़कर अपनी 'रोमैन्स-टूर' पर निकल पड़ा । मथुरा , वृन्दावन , आगरा , ग्वालियर , जयपुर आदि कई शहरों की सैर की । रोमैन्स का यह हाल रहा कि "पाया , चक्खा और फेंक दिया ! " 59 पर यात्रा में उसकी भेंट रामप्रसाद और चमेली से हुई । कहने को पति-पत्नी थे , पर रामप्रसाद ने नन्दू को सब छूट दे रखी थी । नन्दू उस मृगनयनी पर पानी के राह पैसे बहाता है और उन दोनों को अपने साथ भी ले जाना चाहता है । रामप्रसाद को अपने यहां काम पर रख लेने की बात करता है । वह अपनी सारी कीमती चीजें भी चमेली को दे देता है । चमेली के आत्म-समर्पण पर नन्दू उससे पूछता है --" "कितना रस मिला ? " जवाब में चमेली रोते हुए कहती है -- " बाबू साहब , हमारा क्या रस ? " नन्दू

के मतलब पूछने पर शुष्क हंसी के साथ वह बोली — " रखैल और रस?"
नन्दू की सांस रुक गई , और वह पलंग से धीरे-धीरे उठ पड़ा ।" [60]

और चमेली की भावुकता से घायल नन्दू पुनः बन्धनों में जकड़ जाने के डर से भाग खड़ा होता है । वह अपना सारा मूल्यवान ~~स~~ सामान चमेली को देकर वहां से नौ-दो ग्यारह कर जाता है । कहानी का यह अप्रत्याशित अन्त पाठक को ~~झ~~ झकजोर देता है ।

~~सं~~ सुधार की खोज :
===============

कहानी का शीर्षक "सुधाकर की खोज " होता तो भी कोई विशेष अंतर नहीं पड़ता , क्योंकि कहानी के नायक का नाम सुधाकर है । सुधाकर ने एम.ए. किया है , पर उसके सिर पर एक खब्त सवार है । वह समय समाज-सुधार का था , गांधीवाद का था , मुंशी प्रेमचन्द और उनके "सेवासदन" का था । सुधाकर अपनी मां का इकलौता बेटा है , बेशुमार दौलत का मालिक है , लाड़ों में पला है । भावुक और गंभीर है । कह सकते हैं कि बिगड़ने के बजाय सुधर गया है । उसकी मां अब विवाह पर जोर देने लगी है । हररोज उसका सिर खाती है कि लड़की देख आओ , लड़की देख आओ । परंतु सुधाकर "क्रांतिकारी विवाह" करना चाहता है । वह किसी मजबूर वेश्या से विवाह करके उसका उद्धार करना चाहता है । उसका विश्वास है कि हर-एक वेश्या विवाह करके "एक" की होकर रहने को उत्सुक होती है । [61]

वह अपनी यह इच्छा अपने ताऊ के आगे प्रकट करता है । ताऊ एक तजुर्बेकार व्यक्ति है । पहले तो वे सुधाकर को समझाते हैं , पर जब देखते हैं कि सुधारवाद का भूत उसके सिर से उतरने वाला नहीं है , तो वे सुधाकर को छूट दे देते हैं कि वह अपनी खोज शुरू कर दें । सुधाकर "सेवासदन" को "क्रियात्मक रूप " देने के लिए उत्सुक हो जाता है । वह अपनी मुहिम शुरू कर देता है । पहली

बार कोठे पर जाते हुए उसे बड़ा संकोच हो रहा था । " मन शुद्ध था उद्देश्य पवित्र था , वेश आदरणीय था , फिर भी न जाने क्यों सुधाकर का दिल कांप रहा था ? क्यों संकोच ने पल्ला पकड़ा था ? पर आंख मींचकर वह जीने पर चढ़ ही गया । " [62]

इस प्रकार सुधाकर ने कुछेक वेश्याओं से भेंट की । " एक ने कहा , मेरी मां वेश्या थी , मैं भी यही पेशा करतx×हूंx करती हूं । ब्याह की बात सुनकर वह चुप हो गई । " [63] दूसरी शायद ब्याह करने को राजी हो भी जाती पर उसकी मां ने कुछ सख्त-सुख्त कह डाला । उसने कहा कि दश हजार रूपये तो उसे ही देने पड़ेंगे और उसे प्रतिमास पांच सौ रूपये हाथ-खर्च के देने होंगे । " [64]तीसरी ने अभ्यर्थना तो अच्छी की , बातें भी उत्साहपूर्वक कर रही थी , पर ब्याह की बात आते ही खिलखिलाकर कहने लगी -- " अरे बाबू साहब, दिमाग खराब हो गया है क्या ? " [65] चौथी तो लड़ने और बहस करने को तैयार हो गई । कहने लगी -- " आप लोग क्यों हमसे जलते हैं ? क्यों हमारी मिट्टी खराब करते हैं ? " [66] आखिर ताऊ पूछते हैं कि मामला कहां तक आया , तो वह कहता है कि आज एक आखिरी प्रयत्न कर लूं , फिर जैसा वह कहें करेगा । बात-बात में ताऊ उसका अता-पता मालूम कर लेते हैं । सुधाकर को अपने मन के अनुसार लड़की मिल जाती है । जालिम बाप , जमाने की सताई हुई । आखिर उसे लगता है कि "जिन ढूंढा, तिन पाइयां " । ब्याह के लिए भी तैयार हो जाती है । सुधाकर उसे सौ रूपये दे जाता है कि अभी इससे खर्च चलाओ , दस-बीस दिन के भीतर वह उसे ले जायेगा । पर उसके जीना उतरते ही करीमखां के साथ की उसकी बातचीत को वह सुन लेता है और उसका सारा नशा हिरन हो जाता है । सुधाकर को सुनाई पड़ता है -- " बड़ी मोटी चिड़िया है सुंदर , लाखों के वारे-न्यारे हैं ? .... सुंदर उत्तेजित होकर कहती है -- " चुप रहो ! चुप रहो ! लो , पचास नहीं सौ लो , मगर चुप रहो । " [67] करीमखां सौ रूपये की नोट अचकन की जेब में रख लेता है । सुधाकर

मां की बताई हुई लड़की से ब्याह कर लेता है । ताऊजी बहू को मुंह दिखाई में सौ रूपये का एक "सुरक्षित नोट " देते हैं । कहना न होगा कि वह करीमखां वाला रोल ताऊ ने ही किया था । लेखक ने इसका बड़ा संकेतात्मक ढंग से वर्णन किया है । ऐसा प्रतीत होता है कि सुधाकर जिन-जिन से मिलता है , उन सबसे क्या बात होगी वह ताऊजी ही तय करते रहे होंगे , क्योंकि सुधाकर जब "सेवासदन" टाईप ब्याह करने की बात करता है और ताऊजी अपनी संमति देते हैं , तभी लेखक ने एक वाक्य उनसे कहलवाया है । वे सुधाकर की मां से कहते हैं -- "लड़की हाथ से न जाने पाये । ब्याह जल्दी ही होगा । " 68

निग्रह :

मनोविज्ञान के अन्तर्गत अनेक मानसिक अवस्थाओं का चित्रण होता है , उनमें से एक है तार्किकीकरण अथवा औचित्य स्थापना (रेशनालाइजेशन) । इसमें व्यक्ति अपने दोषों , त्रुटियों और असफलताओं को छिपाने के लिए तार्किक प्रपंच की रचना करता है । औचित्य-स्थापन स्वाभिमान कायम करने की इच्छा से प्रेरित दोषपूर्ण तथा आत्म-रक्षात्मक चिन्तन है । 69 प्रस्तुत कहानी का रामदेव इसी मानसिक प्रयुक्ति का सहारा लेता है । रामदेव ने इक्कीसवें वर्ष में कदम रखा है । बी.ए. कर लिया है और मां, बुआ , दादी आदि सब हाथ धोके पीछे पड़ गयी हैं कि अब उसे ब्याह कर लेना चाहिए । परंतु रामदेव पर देश-सेवा का भूत सवार है । वह कहता है -- " मैं विवाह करके कदापि बंधन में न पडूंगा , कदापि देश-सेवा के पथ में कांटे न बिछाऊंगा , कदापि गुलाम संतान पैदाकर , पृथ्वी का बोझा न बढ़ाऊंगा । "70

तब सभी ने रामदेव का खब्त उतारने के लिए एक योजना बनाई । जिस लड़की को इन लोगों ने पसंद किया था , उसे दूर की एक मौसी की लड़की बताया गया । वह बेचारी बहुत गरीब थी , अतः लड़की को लेकर इन लोगों के साथ रहने आ जाती है । धीरे-धरे रामदेव से घनिष्टता बढ़ती है और बहुत जल्द ही यह घनिष्टता प्रेम में

परिवर्तित हो जाती है । तब बाबू रामदेव औचित्य-स्थापन की प्रयुक्ति को अपनाते हैं । वह कहता है -- " रहा सवाल देश-सेवा का ; सो असल में तो संतान इसमें बाधक होती है ; पत्नी नहीं । पत्नी तो बाधक क्या -- पति चाहे तो सहायक बन सकती है । ... और संतान तो अपने हाथ की बात है । संयम तो पुरुषका पहला गुण होना चाहिए । और मेरा तो पच्चीस वर्ष तक का प्रण है । " 71

अतः ब्याह हो गया । पर जली रस्सी की ऐंठन अभी बाकी है । सो संयम पर से बात अब संतान-निग्रह पर आ जाती है । "मेरी स्टोप्स " की सब किताबें पढ़ ली जाती हैं । मौल्थीजियन थ्यूरी[72] तथा "संतान-निग्रह" तथा "बर्थकण्ट्रोल " के सब उचितानुचित उपायों का प्रयोग शुरू हो जाता है और देशभक्त रामदेव बुरी तरह से "निग्रह-भक्ति में जुट जाता है ।

पर इन सब सतर्कताओं और एहतियीत के बावजूद भी रामदेव की पत्नी को गर्भ रह ही जाता है , तब जबर्दस्ती दवाई पिला दी जाती है । परिणाम यह होता है कि बाद में उसे चाहने पर भी गर्भ नहीं रहता । दाई , मेम , डाक्टर , वैद्य , हकीम , यहां तक कि नजूमी-सयाने और आसेब झाड़ने वाले औलिया और फकीरों सबको आजमाया जाता है पर व्यर्थ । अंततः एक हिमालय से आये गुरु साधे जाते हैं । रामदेव की बहू को गुरु के साथ एक रात रहना पड़ता है । रामदेव पहले तो झिझकता है , पर अंत में सबके आक्रमण के आगे टिक नहीं पाता । लेखक अपनी सांकेतिक भाषा-शैली में काफी कुछ कह जाते हैं — " थे तो कोई सिद्ध ही पुरुष ; क्योंकि ठीक नौ महीने बाद रामदेव के घर पुत्र-जन्म हो गया । " 73

अन्धी दुनिया :

"अन्धी दुनिया " कहानी में लेखक ने हमारे समाज के एक कटु सत्य को उजागर किया है । अतः एक तरह से यह

कहानी समाज में प्रचलित फार्मूले के विपरीत है । प्रायः कहानियों में ऐसा आता है कि विवाह के उपरांत लड़का अपनी लाड़ोरानी का हो जाता है और मां को परेशान करता है , या मां की सुनता नहीं है , या मां को दोष देता है । संक्षेप में वह अपनी बहू का पक्ष लेता है । यहां इस प्रसिद्ध फार्मूले का विलोम मिलता है ।

काशीनाथ की मां का स्वभाव अत्यंत ही कलहप्रिय और झगड़ालू औरत का है । मां के इस स्वभाव से काशीनाथ भलीभांति परिचित है और इसीलिए वह शादी की बात को टालता रहता है । पर दुनिया उसके पीछे पड़ जाती है , कि शादी करके उसे अपनी मां को आराम देना चाहिए । अक्र×ले× और तो और मां के पेट का पानी भी तब नहीं पचता था । ज़रा-सा बुखार आता तो गिड़-गिड़ाकर कहती कि — " अरे मेरे लाला , मैं तो सूखा पेड़ हूं , अब चली , तब चली । देख , मैं तो मर ही जाऊंगी , पर तुझे रोटी के भी लाले पड़ जायेंगे । देख , मान जा , हाथ जोड़ती हूं , ब्याह कर ले । " [74] पर काशीनाथ टस से मस न होते , क्योंकि उसे अपनी मां का स्वभाव मालूम था । काशीनाथ की मां चालीस साल की अवस्था में विधवा हुई थी । तब काशीनाथ दश के थे । अब काशी-नाथ की मां पचपन साल की है । "बेटे के प्रति जैसा स्निग्ध प्रेम उसके हृदय के एक कोने में विद्यमान है , दूसरे कोने में जगत के प्रति वैसी ही क्रूरता , पशुता और भयानकता भरी हुई है । " [75]

अतः काशीनाथ ब्याह के बाद के भयानक दृश्यों की परि-कल्पना कर सकता था , अतः ब्याह न करके चुप रहते हुए वह मां की सेवा हंसी-खुशी से कर रहा था । पर एक बार जब मां के बचने की बिल्कुल उम्मीद न रही तो लोगों के भारी इसरार पर उसे ब्याह करना पड़ा , परंतु काशीनाथ के दुर्भाग्य से मां तो ठीक हो गई । गरीब काशीनाथ का भविष्य गंदा करने के लिए , उसे लोकापवाद का कारण बनाने के लिए मां बच गई ।

"बहू आई तो मां की सारी बीमारी काफूर हो गई । कांखते-कूखते प्यार से घर में लाई , रस्में भुगताई , प्यार की बातें की , गोद में लिटाया , मुंह चूमा , और पुराने वक्तों की अपनी परम प्रिय सोने की सिकड़ी मुंह दिखाई में दी । " 76 अबोध बहू ने सास के हृदय में अतुलनीय स्नेह देखा और वह झटपट अपनी मां को भूलने लगी । पर द्विरागमन के बाद आयी तो नीलाकाश में स्पष्ट धूमकेतु का आभास मिलने लगा । स्नेह पुराना पड़ गया और उन्होंने अपना शासन-दण्ड या सास-दण्ड संभाल लिया । काशीनाथ ने यह परिवर्तन देखा तो कांप उठा ।

रोज रात को अपनी पत्नी को ढेर सारी बातें तोते की तरह पढ़ाता । "लक्ष्मी-बहू" , "सास-बहू" , "आदर्श-बहू" जैसी ढेर सारी पुस्तकें वह लाता और अपनी बहू को पढ़ने देता । बहू भी समझ-दार थी । सास को अनुकूल होने की हरचंद कोशिश करने लगी । पर सास है कि हर बात में नुक्श निकालती है । "बहू जिद्दन है , मेरे पैर बबाती है , खसम को खुश करने के लिए । ... मुझे जलाने के लिए कम खाना खाती है , ताकि सूखकर अपने खसम को मेरे खिलाफ भड़का सके । ...मुझसे बात करना पसंद नहीं करती । दिनभर वाहियात किताबें पढ़ती रहती है । .... सुनाने को कहती हूं तो जल्दी-जल्दी और इतना धीरे पढ़ती है कि जी उबने लगता है । ... जोर से पढ़े तो कहती है कि मेरे कान फोड़ डालना चाहती है । " 77

और इस प्रकार काशीनाथ का जीना हराम हो जाता है । वह एफ.ए. तक पढ़ा है । रेलवे में अच्छी-खासी नौकरी है । बहू भी समझदार और सुशील है । कहने को घर स्वर्ग हो सकता है । पर मां के कलहप्रिय स्वभाव के कारण वह नरक से बदतर हो गया है । हररोज किसी-न-किसी बात को लेकर बखेड़ा खड़ा हो जाता है । कहानी का प्रारंभ ही एक ऐसी लड़ाई से हुआ है । काशीनाथ की अपने कर्कश कंठ से घोर निनाद कर रही है — " हाय । इस डायन ने मेरा सत्या-नाश कर दिया । लौंडा मेरा अलग हाथ से निकल गया , ब्याह किया

तो घर का सबकुछ उसमें स्वाहा हो गया ! अब यह हरामजादी डायन मुझे जला-जलाकर क्यों मार डालना चाहती है । अरे , इस तरह जला-जला कर क्यों मारती है , एक दिन खसम से संखिया मंगाकर खिला क्यों नहीं देती ? झगड़ा साफ हो जाय , तेरी जान का बबाल कटे । "[78] यह बातें और दृश्य काशीनाथ के लिए रोजमर्रा के हो गये थे । कई बार तो निर्दोष होते हुए भी वह बहू को मारता-पिटता , फिर क्रोध समाप्त होने पर उसे किसी तरह समझा लेता । पर अन्ततः वह इस झगड़े से तंग आजाता है । एक दिन अचानक मां क्या देखती है कि बेटा-बहू दोनों गायब है । घर से कुछ भी नहीं लिया था । उन लोगों ने तय किया था कि वे मां से अलग रहेंगे । मां को हर महीने खर्च के लिए बारह रूपये मिलते रहेंगे । पर इस पर भी मां ने कोहराम मचाया और इस अंधी दुनिया के सयाने इकट्ठे होकर काशीराम को कोसने लगे । उसे तरह-तरह के ताने देने लगे । उसे दूसरे श्रवणकुमारों के उदाहरण सुनाये जाने लगे । कहा जाने लगा कि ताली दोनों हाथ से बजती है । तब काशीनाथ ने ढीट होकर कहा कि साहब यहां तो ताली एक ही हाथ से बजती है ।

वह लोगों से निवेदन करता है -- " देखिए साहब , मैंने सारा जेवर-रूपया , कपड़ा-लत्ता छोड़ दिया , घर भी छोड़ दिया, और उसके खर्च के लिए जो कुछ बनता है , देता हूं -- आप लोग मुझे माफ करें । मैं पास उसे रख नहीं सकता ! हमारा निर्वाह अब हो ही नहीं सकता । "[79] पर दुनिया वाले उसकी एक नहीं सुनते । अन्ततः काशीनाथ को झुकना पड़ता है । काशीनाथ ने मां को रख लिया , पर दुनिया के अन्धेपन ने काशीनाथ की आंखें खोल दी । सारी शराफत और मातृभक्ति को ताक पर रख वह अब मां से बुरा व्यवहार करने लगा । मां के द्वारा झगड़ा करने पर घर बंद करके मां की पिटाई करने लगा । मां दुनियावालों के पास गई पर वही जवाब मिला कि घर में दो बर्तन होते हैं तो खड़कते तो हैं । इस प्रकार काशीनाथ ने सिद्ध कर दिया कि लातों के भूत बातों से नहीं मानते ।

ऋषभजी की कहानी-कला :

यहां हमने ऋषभजी की कुछ प्रातिनिधिक रचनाओं को लिया है । उनके आधार पर उनकी कहानी-कला के कुछेक मुद्दों की चर्चा हो सकती है । उनका जीवनानुभव विस्तृत है । लेखक , प्रकाशक , पत्रकार, फिल्म-वितरक प्रभृति विभिन्न क्षेत्रों का अनुभव होने से उन्हें तरह-तरह के लोगों से मिलने का अवसर मिला । दिल्ली के अतिरिक्त बम्बई , कलकत्ता , करांची , लाहौर , इलाहाबाद , पटना जैसे कई शहरों में उनका जाना-आना रहा ; फलतः उनके अनुभव का दायरा और भी फैलता गया । अतः प्रेमचन्द जैसे कहते हैं कि उन्होंने इस जीवन से चरित्रों को उठाया है , आले पर रखी हुई पुस्तकों से नहीं , यह बात हम ऋषभजी के सन्दर्भ में भी कह सकते हैं ।

डा. विजयमोहन सिंह ने "आज की कहानी" की चर्चा करते हुए प्रेमचन्द की कहानी के सन्दर्भ में कहा है -- " प्रेमचन्द " जनरालाइज़ " या सामान्यीकरण ज़रूर करते हैं और उनकी कहानियां सूत्रों से भरी पड़ी हैं । पर अजीब तौर पर उनके सूत्र उबाते नहीं , न किसी प्रकार की उपदेशात्मक रूढ़िवादिता का आभास कराते हैं बल्कि उनसे लेखक की वास्तविक बहुज्ञता के बारे में तथा ज़िन्दगी की उसकी खरी समझ के संबंध में एक विश्वास पैदा होता है , ठीक उसी तरह जैसे हर कदम पर सूत्रों की बैसाखियों के बिना न चल पाने वाली तुलसी की चौपाइयां हमें उनके विस्तृत मानवीय ज्ञान का परिचय कराती हैं , हम सहज आश्वस्त भाव से उनके परीक्षण की आवश्यकता नहीं समझते , वे स्वतः परीक्षित-सी प्रतीत होती हैं । " [80]

ठीक यही बात हम ऋषभजी के संदर्भ में कह सकते हैं कि उनकी कहानियों में भी सूत्र होते हैं , परंतु ये सूत्र उनके मानवीय ज्ञान के निरीक्षण से प्रतीत होते हैं । कई बार तो वे जीवन के किसी अनुभव को सूत्र-रूप में रखते हैं और फिर उसकी ~~xxxxxx~~ व्याख्या के लिए कहानी की रचना करते हैं । "दुनियादारी" , "स्वर्ग की देवी" , "मन का पाप",

"सुधार की खोज " आदि इस तरह की कहानियां हैं । "स्वर्ग की देवी" कहानी की तो शुरूआत ही एक ऐसे सूत्र से होती है — " बंसीलाल जैसे अनेक उदाहरणों के कारण मैं इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि सार्वजनिक संस्थाओं का पदाधिकारी होना नैतिक चरित्र की उच्चता का सुबूत नहीं । " 81

प्रेमचन्द-युग के लेखकों ने अपने समय के शोषण-तंत्र को उसके सम्पूर्ण और वास्तविक स्वरूप में देखा था । यहां छोटे-बड़े शोषकों के अनेक गिरोह हैं —'चींटी ' से लेकर 'हाथी' तक के बीच शोषण-तंत्र की अनेक इकाइयां हैं , केवल मजदूर-किसान का शोषण सेठ-साहूकार और जमींदार-पटवारी ही नहीं करते , शोषकों के बीच भी शोषण का एक दूसरा स्तर है । "दान" , "स्वर्ग की देवी " तथा "रखैल" जैसी कहानियों में हम इस तथ्य को रेखांकित पाते हैं ।

श्भभंजी का युग गांधीवाद और सुधार का युग है , अतः उनकी कहानियों में प्रायः नायक देशप्रेम की बातें करते हैं , देश के लिए अविवाहित रहने की घोषणाएं करते हैं । "संयोग" कहानी के ब्रजमोहन कहते हैं कि " गुलाम देश में ब्याह करना गुनाह है । ... हर एक जवान को देश-हित के लिए जान दे देनी चाहिए । ... ब्याह करना पतन का कारण है । ... किसीसे कह दिया कि मुसलमान स्त्री से ब्याह करूंगा । " 82 उसी प्रकार "निग्रह" कहानी के रामदेव कहते हैं — " मैं विवाह करके कदापि बंधन में न पड़ूंगा , कदापि देश-सेवा के पथ में कांटे न बिछाऊंगा , कदापि गुलाम संतान पैदाकर पृथ्वी का बोझा न बढ़ाऊंगा । " 83 तो ह्र " सुधार की खोज " कहानी का सुधाकर ' क्रांतिकारी-विवाह ' की बात करता है । लेखक ने ये बातें तत्कालीन सन्दर्भ में कही हैं , पर साथ-ही-साथ यह भी उद्घाटित किया है कि आदर्शों की बात करना एक बात है और ज़िन्दगी के यथार्थ को झेलना एक दूसरी ही बात है । उस यथार्थ के आगे प्रायः लोग घुटने टेक देते हैं ।

ऋषभजी की कहानी कहने की शैली सरल और प्रत्यक्ष है । वे अपने पाठकों से सीधे बात करते हैं । औपचारिकता या कृत्रिमता का कहीं आभास नहीं होता । सांकेतिकता , लाक्षणिकता , प्रतीकात्मकता, चित्रात्मकता , बहुश्रुतता , सूत्रात्मकता तथा कथनोकथनों की संक्षिप्तता जैसे गुण उनकी कहानियों में मिलते हैं । मुख्य पात्रों के अतिरिक्त कहानी में पार्श्वभौमिक पात्रों का भी एक विशेष महत्त्व होता है । वस्तुतः इन पात्रों से ही लेखक वातावरण या परिवेश का निर्माण करता है और यह भी उतना ही सत्य है कि जीवन का प्रत्यक्ष अनुभव जिस लेखक के पास होता है वही इन पार्श्वभौमिक पात्रों की यथार्थ-सृष्टि कर ने में सफल होता है । ऋषभजी की कहानियों को विश्वसनीय बनाने में ऐसे पात्रों का योगदान कम नहीं है ।"संयोग" , "मन का पाप" , "निग्रह" , "अन्धी दुनिया" जैसी कहानियों में पार्श्वभौमिक पात्रों के यथार्थ-चित्रण चित्रण से कहानी को एक विश्वसनीय परिवेश प्राप्त हुआ है । हां , कहानियों में अनावश्यक विस्तार कहीं-कहीं खटकता है ।

अध्याय के समग्रावलोकन से हम निम्नलिखित निष्कर्षों तक पहुंच सकते हैं :--

§1§ ऋषभजी की कहानियों में हमें प्रेमचन्द , जैनेन्द्र तथा उग्रजी तीनों के सूत्र मिलते हैं । "दान" , "दुनियादारी" , "स्वर्ग की देवी" , "पांच रूपये का कर्ज " प्रभृति कहानियों में जहां हम प्रेमचन्द के प्रभाव को लक्षित कर सकते हैं ; वहां "भय" , "मन का पाप" , "कौड़ियों का हार" जैसी कहानियों में जैनेन्द्रीय प्रभाव दृष्टिगोचर होता है । "रखैल" , "निग्रह" तथा "सुधार की खोज" जैसी कहानियों में उग्रजी की यथार्थवादी दृष्टि मिलती है ।

§2§ ऋषभजी की कहानियां यथार्थ स्थितियों पर आधारित हैं । यद्यपि उनमें कहीं-कहीं जीवन का गर्हित पक्ष मिलता है , तथापि जहां दोनों पक्ष दोषित नहीं होते हैं वहां उनके चित्रण में कलात्मक संयम मिलता है । केवल उन स्थानों पर नग्नता अपने अप्रच्छन्न रूप में मिलती है , जहां दोनों पक्ष वासना में लिप्त होते हैं ।

§3§ कहानी-लेखन में लेखक का दृष्टिकोण सुधारवादी रहा है । लेखक अनमेल-ब्याह तथा वृद्ध-विवाह के घोर विरोधी हैं । अतः "संयोग" कहानी में तो ऐसी स्थितियों को चित्रित किया है , जिनमें एक आदर्श-प्रेमी युवक प्रतिमा नामक युवती को वृद्ध-विवाह के चंगुल से बचा लेता है । विधवा-विवाह का भी वह पक्षपाती है । दहेज-प्रथा का विरोध मिलता है ।xxxxx यद्यपि लेखक का दृष्टिकोण सुधारवादी रहा है , तथापि छद्म सुधारवादियों को बेपर्द करने में भी वह चुकता नहीं है ।

§4§ कहानी की विश्वसनीयता का मुख्य आधार उसके यथार्थ परिवेश-चित्रण पर रहता है । ऋषभजी की कहानियों में यह पक्ष सर्वाधिक पुष्ट है । पार्श्वभौमिक गौण पात्रों का खरापन कहानी के यथार्थ परिवेश को उकेरने में महत्वपूर्ण योग देता है । "संयोग" , "निग्रह" , "अंधी दुनिया" , "दुनियादारी" इत्यादि कहानियों में हम इसे रेखांकित कर सकते हैं ।

§5§ ऋषभजी की कहानियों में की भाषाशैली सीधी-सादी , सरल तथा पात्र और परिवेश के अनुकूल है । आवश्यकतानुसार अंग्रेजी तथा उर्दू के शब्दों और जुम्लों का प्रयोग लेखक ने किया है । उनकी शैली में सांकेतिकता , संक्षिप्तता , चित्रात्मकता तथा कथनोपकथनों में सचोटता जैसे गुण प्राप्त होते हैं । पात्रों की भाषा ही नहीं विचार भी वातावरण के अनुरूप होते हैं ।

§6§ ऋषभजी की कहानियों में लगभग सर्वत्र व्यंग्यात्मकता उपलब्ध होती है । "दान" कहानी तो उसका एक प्रतिमान सिद्ध होती है । "दुनियादारी" , " पांच रूपये का कर्ज " , "निग्रह" प्रभृति कहानियों में भी हम व्यंग्य के छींटे पा सकते हैं ।

======= xxxxxxx =======

:: सन्दर्भानुक्रम ::

§1§ बाबू गुलाबराय : काव्य के रूप : पृ. 206 ।

§2§ पत्रिका : "सुधा" : सं. रामचन्द्र शर्मा । – १९२८

§3§ "चित्रपट" : 14 मई : 1934 ।

§4§ "चांदनी रात" : पृ. 58 ।

§5§ वही : पृ. 58 ।

§6§ कहानी : "स्वर्ग की देवी" : चांदनी रात : पृ. 78 ।

§7§ यहां यह तथ्य ध्यातव्य है कि प्रेमचन्द ने कहानी के अंत को थोड़ा-सा बदल दिया था ।

§8§ शोधार्थी की व्यक्तिगत मुलाकात के आधार पर ।

§9§ "चांदनी रात" : पृ. 106 ।

§10§ वही : पृ. 46 ।

§11§ दान तथा अन्य कहानियां : पृ. 9 ।

§12§ यहां यह तथ्य ध्यातव्य रहे कि उन दिनों में तीन सौ रूपये की भी काफी कीमत हुआ करती थी । ये तीन सौ रूपये आजकल के चार-पांच हजार से कम नहीं समझे जा सकते ।

§13§ दान तथा अन्य कहानियां : पृ. 9-10 ।

§14§ "उपन्यास" शीर्षक लेख : कुछ विचार : प्रेमचन्द ।–१९४ –

§15§ "हिन्दी उपन्यास साहित्य की विकास-परंपरा में साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास" : शोध-प्रबंध : डा. पारूकांत देसाई । पृ. 64 ।

§16§ वही : पृ. 34 ।

§17§ द्रष्टव्य : दान तथा अन्य कहानियां : पृ. क्रमशः 16, 17, 19, 34, 71 ।

§18§ द्रष्टव्य : समीक्षायण : डा. पारूकांत देसाई : पृ. 143 ।

§19§ दान तथा अन्य कहानियां : पृ. 10 ।

§20§ वही : पृ. 11 ।

§21§ वही : पृ. 15 ।

§22-23§ : वहीं : पृ. क्रमशः 19, 19 ।

§24§ भय : दान तथा अन्य कहानियाँ : पृ. 25 ।

§25 से 28 § : वही : पृ. क्रमशः 26-27 , 27 , 29 , 26 ।

§29§ दुनियादारी : दान तथा अन्य कहानियाँ : पृ. 31 ।

§30 से 33 § : वही : पृ. क्रमशः 39 , 39 , 43 , 43 ।

§34§ स्वर्ग की देवी : दान तथा अन्य कहानियाँ : पृ. 44 ।

§35§ द्रष्टव्य : बरफ की चट्टानें : कहानी - "काला कौआ" : पृ. 238-247 ।

§36§ स्वर्ग की देवी : दान तथा अन्य कहानियाँ : पृ. 44 ।

§37§ वही : पृ. 69 ।

§38§ द्रष्टव्य : संयोग : दान तथा अन्य कहानियाँ : पृ. 71-72 ।

§39§ वही : पृ. 95 ।

§40§ वही : पृ. 96 । §41§ वही : पृ. 97 ।

§42§ द्रष्टव्य : समीक्षायण : डा. पारूकांत देसाई : पृ. 143 ।

§43§ डा. दूधनाथसिंह : हिन्दी कहानी : "सार्थक कहानियाँ" की भूमिका : पृ. 9 ।

§44§ मन का पाप : दान तथा अन्य कहानियाँ : पृ. 100 ।

§45-46§ : वही : पृ. क्रमशः 102 , 105 ।

§47§ प्रेमचन्द : कुछ विचार : पृ. 41 ।

§48§ द्रष्टव्य : डा. परमानंद श्रीवास्तव : "कथांतर" : भूमिका : पृ. 11 ।

§49§ कौड़ियों का हार : दान तथा अन्य कहानियाँ : पृ. 108-109 ।

§50 से 55 § : वही : पृ. क्रमशः 111 , 113 , 113 , 115 , 116, 116 ।

§56§ पाँच रूपये का कर्ज : दान तथा अन्य कहानियाँ : पृ. 132 ।

§57§ रखैल : दान तथा अन्य कहानियाँ : पृ. 134 ।

§58 से 60 § वही : पृ. क्रमशः 135, 135, 142 ।

§61§ सुधार की खोज : पृ. 145 ।

§62 से 68§ वही : पृ. क्रमशः 148, 148, 148, 149, 149, 154, 146 ।

§69§ द्रष्टव्य : "मन्नू भंडारी के कथा-साहित्य का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन " : डा. ममता शुक्ला : पृ. 32 ।

(70) निग्रह : पृ. 156 ।

(71) वही : पृ. 159 ।

(72) जिसमें महीने के कुछ दिन संतान-निग्रह की दृष्टि से सुरक्षित समझे जाते हैं ।

(73) निग्रह : पृ. 162 ।

(74) अंधी दुनिया : पृ. 164 ।

(75-76) : वही : पृ. क्रमशः 165 , 165 ।

(77) द्रष्टव्य : वही : पृ. 166 ।

(78-79) : वही : पृ. क्रमशः 163 , 169 ।

(80) आज की कहानी : विजयमोहनसिंह : पृ. 20 ।

(81) दान तथा अन्य कहानियां : पृ. 44 ।

(82-83) : वही : पृ. क्रमशः 70 , 156 ।

======= xxxxxxx =======